ज्ञानामृत

दिसम्बर, 1987

वर्ष 23 ❋ अंक 6

मूल्य 1.75

दिल्ली: शक्ति नगर सेवाकेंद्र द्वारा राणा प्रताप बाग में आयोजित 'जीवन दर्शन शान्ति मेला' के उद्घाटन अवसर पर दीप प्रज्ज्वलित कर रहे हैं भ्राता आर.सी. गुप्ता, सेक्रेटरी सेंट्रल बोर्ड आफ सेकेंड्री एजुकेशन तथा अन्य ब्र.कु. बहिनें।

ब्र कु. जगदीश चन्द्र, मुख्य प्रवक्ता ब्र.कु.ई. वि. विद्यालय तथा मुख्य संपादक ज्ञानामृत, वर्ल्ड रिन्यूवल तथा प्योरिटी पोलैण्ड की कौंसिल के सदस्य भ्राता लिपस्की जी को कल्प वृक्ष पर समझाते हुए।

मॉरीशियस में सेवाकेंद्र के लिए नये भवन के उद्घाटन पश्चात् चित्र में भारत के उच्चायुक्त भ्राता के.के. भगवती, ब्र.कु. दादी जानकी जी, बी.के. मदन, बी.के. लक्ष्मण, भ्राता स्वरूप सिंह तथा अन्य शिवबाबा की याद में उपस्थित हैं।

अमृतसर में हुए 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' सम्मेलन में मंच पर उपकुलपति एस.एस. बाल जी, दादी जानकी जी, दादी चन्द्रमणि जी, महामण्डलेश्वर हंस प्रकाश जी, बी.के. प्रेम जी, बी.के. प्रतिभा, बी.के. चन्द्रिका उपस्थित हैं।

जालंधर निवासियों की ओर से जानकी दादी को समाज-सेविका बहन अरूणिमा गाँधी उपहार भेंट कर रही हैं।

राजोरी गार्डन (दिल्ली): संसद सदस्या बहिन सुंदरवन्ती नवल प्रभाकर तथा नारायणा क्लब के सदस्यों के साथ ब्र.कु. अरुणा जी, बी.के. लक्ष्मी जी दिखाई दे रही हैं।

दुर्ग में 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम का उद्घाटन किया गया। संत श्री पवन दीवान जी (ब्रहमचर्य आश्रम) भी पधारे थे। चित्र में एकाग्रभद्रा में खड़े हैं।

सान फ्रांसिस्को (अमेरिका) में चैतन्य दुर्गा की झाँकी का दृश्य।

भरतपुर सेवाकेंद्र पर ब्रांता अशोक सम्पतराम जिलाधीश पधारे थे। आप द्वारा 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम का उद्घाटन हुआ।

पूना क्वार्टर गेट सेवाकेंद्र की ओर से आयोजित कार्यक्रम में "धुंदी महाराज, श्री श्री १००८ देवपुरे अपने विचार प्रगट कर रहे हैं।

बरनाला सेवाकेंद्र की ओर से एक शिक्षक वर्ग के स्नेह-मिलन में मथुरा प्रसाद हेडमास्टर अपने विचार प्रगट कर रहे हैं।

तजपुर शांणित पुर जिला के जिला एवं सत्र-न्यायाधीश लक्ष्मी बरदले जी आध्यात्मिक प्रदर्शनी तथा चैतन्य दुर्गा की झाँकी का उद्घाटन कर रहे हैं।

ढेंकनाल में आध्यात्मिक प्रदर्शनी देखने के लिए भ्राता एफ.एम. पान्डा, ए.डी.एम. साहब पधारे थे। बी.के. मंजू चित्रों की व्याख्या दे रही हैं।

बड़ौदा: 'गर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम के अंतर्गत हुए कार्यक्रम में जिला पंचायत के अध्यक्ष भ्राता जगदीश जी जिला पंचायत के मैम्बरों के बीच अपने विचार प्रगट कर रहे हैं। बी.के. राज जी भी बैठी हैं।

पोलैण्ड में ब्र.कु. जगदीश जी एक गोष्ठी में 'आत्मा' पर व्याख्या दे रहे हैं।

नवा शहर 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम में दादी चन्द्रमणि जी ईश्वरीय सन्देश दे रही हैं। मंच पर बैठी हैं ब्र.कु. बहनें तथा देव इच्छा जी (बी.एड. कालेज की प्रिंसीपल)।

अजमेर: पुष्कर मेले में चैतन्य देवियों की झाँकी के समक्ष खड़े हैं अजमेर के कलेक्टर भ्राता आर.एन. मीना, उनके पास में पु. अधीक्षक भ्राता नवीन शर्मा तथा ए.डी.एम. जी।

खारी बावली (दिल्ली): सेवाकेंद्र द्वारा आयोजित एक आध्यात्मिक प्रदर्शनी में बी.के. इन्दू भ्राता सतीश सक्सेना के चित्रों की व्याख्या कर रही हैं।

शक्ति नगर (दिल्ली): द्वारा आयोजित मेले में भ्राता आर.सी. गुप्ता जी चित्रों की व्याख्या बड़े ध्यानपूर्वक सुन रहे हैं।

दिल्ली: *गाँधी भवन, दिल्ली विश्वविद्यालय में हुए शिक्षाविद सम्मेलन में भारत के समाज कल्याण विभाग में राज्यमंत्री डॉ. राजेंद्र कुमारी बाजपेयी अपने विचार प्रस्तुत कर रही हैं। मंच पर (बाएं से) ब्र.कु. चक्रधारी, भ्राता आर.पी. मिश्रा, गाँधी भवन के निदेशक, भ्राता ब्र.कु. जगदीश जी, प्रो. गंगराडे, प्रो. वाइस-चांसलर, दिल्ली यूनिवर्सिटी तथा ब्र.कु. सुधा जी विराजमान हैं।*

अमृत-सूची

१.	हम बदलेंगे तो जग भी बदलेगा	२
२.	विद्वानों का आह्वान	५
३.	रहस्य सुख का	७
४.	जागृति	९
५.	दुनिया ये होती है किस कदर...	१२
६.	माया के चार रूप	१३
७.	सच्ची कमाई	१४
८.	जीवन की थकान को दूर करने की आध्यात्मिक विधि	१५
९.	विकार और दुःख	१७
१०.	चोरी-छिपी	१८
११.	निरोगी और विर्विघ्न जीवन का आधार निस्संकल्पता	२०
१२.	केवल आध्यात्मिक क्रान्ति से ही विश्वशान्ति	२१
१३.	एकता	२२
१४.	सबको सहारा परमात्मा का	२३
१५.	कर्मों की सम्पन्नता व पूर्णता का आधार मन की शुद्धता	२४
१६.	बनने वाला देवस्थान	२५
१७.	संस्कार एवं संस्कृति	२६
१८.	ईश्वरीय पढ़ाई बनाती है सुखदाई	२९
१९.	आध्यात्मिक सेवा समाचार	३२

बम्बई-गामदेवी: *ब्र.कु. रमेश जी, ब्र.कु. उषा, कुसुम, भारत के उपराष्ट्रपति भ्राता शंकर दयाल शर्मा जी से भेंट करते हुए। वे उन्हें 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम के बारे में अवगत कराते हुए।*

हम बदलेंगे तो जग भी बदलेगा

जो भी लोग आध्यात्मिक मार्ग पर चलना प्रारम्भ करते हैं, वे यह सोचकर चलते हैं कि जीवन में सद्गुण अपनाने हैं और दुर्गुण छोड़ने हैं। धार्मिक क्षेत्र में अतीत में हुए उच्च लोगों के महान् वृत्तांतों को सुनकर या पढ़कर ही तो उन्हें प्रेरणा मिलती है कि वे स्वयं भी अब महान् बनेंगे। जब कोई चरित्रवान व्यक्ति उन्हें समझाता है कि खोटे कर्मों को छोड़ना चाहिये और अपने व्यवहार को श्रेष्ठ बनाना चाहिये तो उनके मन को यह बात ठीक लगती है, तभी तो वे महान् बनने की चेष्टा करते हैं। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि महान् बनने की कामना होने पर भी, प्रारम्भ में कई दुर्गुण शीघ्रता से छोड़ने पर भी, आगे चलकर बहुत लोगों के मनो-परिवर्तन एवं संस्कार-परिवर्तन की गति मन्द पड़ जाती है। कुछ दुर्गुण या अशुभ लक्षण जिन्हें वे छोड़ चुके थे, वे भी कई बार फिर उन्हें आ घेरते हैं। अन्य कई आदतें, जिन्हें अब भी वे स्वयं अच्छा नहीं मानते, वे अब छोड़ने में या तो स्वयं को असमर्थ अनुभव करते हैं या अब वे उन्हें छोड़ना नहीं चाहते। परिणाम यह होता है कि उन्नति की इच्छा होने पर भी अब आगे उनकी प्रगति नहीं होती। सोचने की बात है कि ऐसा क्यों होता है और ऐसी स्थिति होने पर क्या करना चाहिए?

पर-दर्शन ही आत्म-दर्शन में रुकावट

जब हम ऐसे लोगों की बात सुनते हैं जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है तो हम देखते हैं कि वे स्वयं बताते हैं कि वे खुश नहीं हैं, संतुष्ट नहीं हैं बल्कि अशान्त हैं। उन्हीं द्वारा उनकी बातचीत सुनने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वे अन्य जिन व्यक्तियों के संपर्क में आते हैं, उन्हीं से कोई संघर्ष होने के कारण आगे नहीं बढ़ते। जब कोई अन्य व्यक्ति, चाहे वह 'ज्ञानवान' कहलाता हो, उनसे ठीक व्यवहार नहीं करता तो वे भी अपने व्यवहार को सुधारने की क्रिया रोक लेते हैं। उस व्यक्ति का सामना करने के लिए, उसको "सीधा करने" के लिये या दूसरों की दृष्टि में उसे अपमानित करने के लिये वे भी अपने व्यवहार में ऐसी कलुषित भावनाओं अथवा ऐसे अशिष्ट एवं अभद्र हावभाव का समावेश कर देते हैं जिन्हें उनका अपना अन्तर्मन भी ठीक नहीं मानता। ऐसी स्थिति में जब उन्हें कोई समझाता है कि वे ठीक आचरण नहीं कर रहे तो वे उत्तर में कहते हैं कि इस संसार में ऐसा ही करना पड़ता है। वे कहते हैं—"हम बहुत दबकर और भलमन्साई से चलते रहे हैं परन्तु उससे दूसरा व्यक्ति सिर पर ही चढ़ गया है, वह आगे बढ़ता ही जाता है, वह और अधिक 'शेर' बनता जा रहा है; इसलिये अब हम उसे छोड़ेंगे नहीं। हम उसे ठीक करेंगे, बाद में हम बदलेंगे।"

वाह! यह भी क्या अजीब तर्क है!! पहले अपने निकृष्ट व्यवहार से उसे "ठीक" करेंगे? गोया उसे "ठीक" करने के लिये हम पहले निकृष्ट बनेंगे!!" ऐसे व्यक्ति को जब कोई समझाता है कि—"यह क्या कह रहे हो? सोचो तो सही, ऐसे भी कोई ठीक होता है? आप स्वयं की स्थिति को तो संभालो, दूसरे को ठीक करने से पहले स्वयं तो ठीक हो जाओ...।" तब ऐसा व्यक्ति कहता है—"मै तो ठीक हूं। उसे ठीक करो तो मैं ठीक हो जाऊंगा। उसने ही मुझे खराब किया है। उस पर मुझे गुस्सा आता है। वह कर्म ही ऐसे करता है कि मुझ से सहन नहीं होता...।"

यह भी क्या खूब कही—"उसे ठीक करो तो मैं ठीक हो जाऊंगा।" यह भी अजीब होड़ है इसका अर्थ तो यह हुआ कि अगर वह धर्मराज के डंडे खाएगा तो मैं भी ज़रूर खाऊंगा; वह फांसी पर लटकेगा तो मैं भी अवश्य लटकूंगा? यह नई प्रकार की दोस्ती है, नई प्रकार की दुश्मनी है या नये प्रकार का मुकाबला है!

ऐसे समय में तर्कशील मनुष्य को भी यह मालूम नहीं पड़ता कि वह तर्क नहीं कुतर्क कर रहा है। उसे अपने तर्क में कोई गलती दिखाई नहीं देती। बुद्धि पर पर्दा आ जाने से वह अपने हितैषियों की भी बात नहीं मानता। अशान्त बना रहने का भी निर्णय कर लेता है। ज्ञान एवं योग के श्रेष्ठ मार्ग को भी छोड़ने के लिये तैयार हो जाता है। अपनी उन्नति के रुक जाने में भी राज़ी है। वह दूसरे को यह मनवाने के लिये तुला हुआ है कि वह दोषी है परन्तु स्वयं अपना दोष मानने के लिये तैयार नहीं है। यह कैसी परिहासजनक परिस्थिति है!

इसी को ही "जिद्द और सिद्ध" की स्थिति कहते हैं। वह न बदलने के लिये जिद्द करता है, शुभचिन्तकों की तथा वरिष्ठ जनों की बात भी न मानने की जिद्द करता है और स्वयं को ठीक तथा दूसरे को गलत सिद्ध करने पर तुला हुआ है। वह आत्मा या परमात्मा विषयक किसी सत्य को **सिद्ध** करने पर नहीं तुला हुआ बल्कि अपने को दूसरों से अधिक अच्छा सिद्ध करने पर तुला हुआ है। गोया वह इसी **'सिद्धि'** को प्राप्त करना चाहता है। सिद्ध करने की शक्ति को, सारे तर्क शास्त्र को उसने जुए पर लगा दिया है। वह चाहता है कि अन्य मनुष्य फैसला करें, स्वयं फैसला नहीं कर सकता कि उसे अपना जीवन कैसा बनाना है? जब तक दूसरा गलत सिद्ध न हो जाए तब तक आत्मा और परमात्मा की सत्यता को सिद्ध करने

तथा स्वयं दिव्य सिद्धि प्राप्त करने की बात को भी उसने एक ओर रख छोड़ा है। गोया उसकी जिद्द यह है कि मैं दिव्य सिद्धि प्राप्त नहीं करूंगा। क्या कमाल है? कैसा तर्क है? वह दूसरे को हराना चाहता है परन्तु हार में ही उसका अपना समय निकलता जा रहा है। अपने मन को जीतने की बजाय किसी मनुष्य को जीतने का उसने लक्ष्य ले लिया है। भगवान् को भूलकर भी वह उसी मनुष्य को याद करता है। वह आत्म-दर्शन और परमात्म-दर्शन की बात छोड़कर पर-दर्शन को ही अपना जीवन-दर्शन बना बैठा है। किसी ने सच कहा है—आये थे हरिभजन को,ओटन लागे कपास।"

अतः अब परमपिता शिव ने कहा, साक्षात् भगवान् ने कहा है कि महसूसता की शक्ति धारण करो। अभी भी अपनी गलती महसूस न की तो हानि किसकी होगी? दोषी कौन होगा? गलत कौन सिद्ध होगा? अब जब प्रत्यक्षता का पर्दा खुलने लग गया है तो हमारी प्रत्यक्षता क्या होगी? यही कि हम जिद्द और सिद्ध करने में लगे रहे। हम दूसरे को दोषी सिद्ध करने का दोष करते रहे। हम दूसरे किसी को हार मनवाने के लिये माया से हार खाये बैठे रहे। उस व्यक्ति से यह सर्टीफिकेट (प्रमाणपत्र) लेने के लिये कि हम ठीक हैं हमने परमात्मा से सर्टीफिकेट लेने का पुरुषार्थ भी छोड़ दिया। हमने आत्म-दर्शन और परमात्म-दर्शन की चर्चा छोड़कर पर-दर्शन को अपना लिया।

ऐसे तर्क में क्या रखा है? अच्छा दूसरा ही ठीक है, हम गलत हैं, अगर इतनी-सी बात से हमारा पल्ला छूटता है तो इसी में भलाई है। आगे फैसला तो अभी होना है। यहां पेशियां भुगतने से क्या फायदा? भगवान् ही साक्षी हैं। वहां तो गवाहों की, तर्क की, कानून की धारा बताने की ज़रूरत ही नहीं। अब समय ही बाकी कितना रह गया है। भागो, अब तो मंजिल पर पहुंचना है। मन को मगरमच्छ से छुड़ाकर मुक्ति पाओ इन माया-जालों से।

बाबा ने कहा है—"बच्चे आप आधारमूर्त्त हो। आप ही उद्धारमूर्त्त हो। आप निमित्त हो विश्व-परिवर्तन के लिये। आप बदलोगे तो यह विश्व बदलेगा।आप गहरी महसूसता करके स्वयं बदलो। मेरी ओर देखो, दूसरी ओर न देखो। बच्चे, आपके कारण ही पर्दा खुलना रुक जाता है।" अतः हमें तो रुकावट का दोषी नहीं बनना चाहिए। सुखदायी संसार बनाने के लिये अब हमें यही सहयोग देना चाहिए। हमें यही याद रखना चाहिये कि—"हम बदलेंगे तो जग बदलेगा। अब हम अवश्य बदलेंगे और जग भी बदलेगा।"

—जगदीश

भुज-कच्छः *ब्र.कु. रक्षा बहिन गुजरात के राज्यपाल जी को 'सर्वात्माओं का चित्र भेंट करते हुए। साथ में विधान सभा सदस्या बहिन कुमुदीनी पंचोली जी हैं।*

अफजलपुरः *बी.के. रंजना भारत के वित्त राज्य मंत्री भ्राता जनार्दन पुजारी जी को ईश्वरीय साहित्य भेंट करते हुए।*

महबूब नगरः *'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम का उद्घाटन कर रहे हैं भ्राता राजेंद्र पाटिल, सम्पादक ग्रिनोबल्स गुलबर्गा, ब्र.कु. प्रेम, डॉ. अल्लाडि पी. राजकुमार, पर्यटन मंत्री आ.प्र., पि. चंद्रशेखर, विधान सभा सदस्य, एम. इंदिरा, विधान सभा सदस्य, ब्र.कु. विजया तथा नीरा।*

लातूर: *'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' उद्घाटन कार्यक्रम में अपने विचार रखते हुए महसूल, सहकार, परिवहन व विधिमंडल कामकाज मंत्री महाराष्ट्र राज्य भ्राता विलासराव देशमुख जी।*

गामदेवी-बम्बई: *भ्राता भालचन्द्र सावंत सार्वजनिक अरोग्य, कुटुम्ब कल्याण मंत्री, महाराष्ट्र जी को बी.के. कुसुम आध्यात्मिक संग्रालय का अवलोकन कराते हुए।*

अशोक विहार (दिल्ली): *भ्राता दीपचंद बंधु जी को ब्र.कु. राज तथा विमला बहिन ने दैवी गुणों का गुलदस्ता भेंट किया।*

बिदर: *कर्नाटक की महिला और समाज कल्याण मंत्री श्रीमती चतुरे, 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम के बारे में ब्र.कु. बहिनों के साथ चर्चा करते हुए।*

फरीदकोट: *'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम का उद्घाटन पंजाब विद्युत बोर्ड के निगरान इंजीनियर साधु सिंह जी और कार्यकारी इंजीनियर तथा दादी चन्द्रमणि जी कर रहे हैं।*

धर्मशाला: *'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम के अन्तर्गत हुए शिक्षक कार्यक्रम का उद्घाटन दृश्य।*

विद्वानों का आह्वान

बी.के. सूरज कुमार, माऊंट आबू

वेदों के चार पहियों पर तीव्रता से दौड़ती हुई वसुन्धरा देवी की गाड़ी दिनोंदिन अधर्म, अशान्ति और अनैतिकता की ओर क्यों बढ़ रही है? श्रेष्ठ बीज होते हुए भी वृक्ष कमज़ोर क्यों? इन कुछ बातों पर पुनः गहनता से चिन्तन करने के लिए हम पुनः नम्रतापूर्वक भारतीय विद्वानों का आह्वान करते हैं। निस्संदेह वेद और दर्शन प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। उनमें समाज की सुन्दर व्यवस्था भी बताई गई है। उनमें मनुष्यात्मा की मुक्ति के विभिन्न उपाय भी वर्णित हैं। दर्शन में गूढ़ सिद्धांतों की भी विवेचना की गई है। परंतु मानव अंधकार की ओर क्यों दौड़ रहा है? मानव दिनोंदिन बंधनों में क्यों बंधता चला जा रहा है?

क्या साधना पक्ष कमज़ोर है या सिद्धांत पक्ष अपूर्ण या दोनों में ही कुछ अभाव है? हमारे इस ईश्वरीय विश्वविद्यालय में कई विद्वान, संत, महात्मा आते हैं और यहां के समस्त कार्यों को देखकर, यहां के सिद्धांतों को सुनकर व यहां के आकर्षक शान्त व पवित्रता के वातावरण को देखकर वे प्रायः इस प्रकार कहते हैं–

"ऐसी शान्ति देवताओं को भी अप्राप्त है, देवता भी ऐसी शान्ति के लिए यहां आने के इच्छुक होते होंगे, यहां की पवित्रता गायन योग्य है, यहां आकर मन की दूषित भावनाएं शान्त हो जाती हैं, चित्त की वृत्तियों का सहज ही निरोध हो जाता है। परंतु आपके सिद्धांत, जो कि कुछ-कुछ शास्त्रों से भिन्न हैं, हमें मान्य नहीं।"

हम ऐसे महामण्डलेश्वरों से नम्रतापूर्वक पूछते हैं कि "शान्ति व पवित्रता हमारे यहां, और सत्य सिद्धांत आपके पास"–ये विरोधाभास क्यों? सिद्धांतों के आधार पर ही तो जीवन का निर्माण होता है और जीवन में विचारों के आधार पर ही तो शान्ति व पवित्रता का वातावरण बनता है। यदि सत्य सिद्धांत आपके पास हैं तो शान्ति व पवित्रता भी आपके ही पास होनी चाहिए, हमारे पास नहीं। और यदि शान्ति व पवित्रता हमारे पास है तो सिद्ध है कि सत्यता भी हमारे ही पास है। तो हमारा आग्रह है कि इन सिद्धांतों पर चिन्तन करें। न तो हम कुतर्क ही करना चाहते और न ही अपने सिद्धांतों को किसी पर थोपना।

हम ये भी नहीं कह रहे कि वेद व दर्शन असत्य हैं या हम उन्हें नहीं मानते, बल्कि हम तो यह कह रहे हैं कि उनमें जो कुछ लिखा है, उसके अतिरिक्त भी कुछ ज्ञान है, जो कि या तो शास्त्रों में वर्णित नहीं या फिर किन्हीं मन्त्रों व सूत्रों की व्याख्या यथार्थ नहीं की गई। और इसका सबसे बड़ा प्रमाण हम देख सकते हैं–

कि आद्य शंकराचार्य के बाद रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, माध्वाचार्य व महाप्रभु बल्लभाचार्य ने भी उन्हीं सूत्रों की भिन्न-भिन्न व्याख्या करके संसार के समक्ष चुनौती-भरे विभिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। आचार्यगण परस्पर शास्त्रार्थ करते रहे और विभिन्न मत स्थापित होते गये। तो एक सत्य के बारे में प्रस्थानत्रयी (गीता, उपनिषद व ब्रह्मसूत्र) के आधार पर ही, अनेक वाद क्या सत्यता में भ्रम पैदा करने वाले नहीं हैं? जबकि प्रत्येक आचार्य अपने सिद्धांतों को सत्य व दूसरे के सिद्धांतों को असत्य मानता है।

अब प्रश्न है कि सम्पूर्ण सत्य कहां है, वेदों, दर्शन व उपनिषदों में या इससे भी पार?

निष्पक्ष रूप से सभी मतों पर दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि कुछ प्रश्नों के उत्तर देने में सभी का दर्शन उलझा हुआ है। आचार्य तोड़-मोड़कर उत्तर देने का प्रयास करते हैं। सार रूप में यों कहा जा सकता है कि किसी ने भी आत्मा व परमात्मा के स्वरूप का ऐसा स्पष्ट वर्णन नहीं किया जो कि मनुष्य की सहज समझ में आ सके। उसमें इतनी गूढ़ता भर दी कि छोटी-सी बात उलझ कर रह गई। हम सभी जानते हैं कि सृष्टि रूपी कल्प वृक्ष का बीज होने के कारण परमात्मा ही ज्ञान के सागर, ज्ञान-दाता, सम्पूर्ण सत्य हैं, दिव्य बुद्धि दाता व दिव्य चक्षु विधाता है। अतः वे ही आत्मा, परमात्मा, सृष्टि चक्र, मुक्ति व योग का सम्पूर्ण ज्ञान देते हैं।

ईश्वरीय विश्वविद्यालय द्वारा दिया जा रहा ज्ञान पुस्तकों का नहीं है, न ही किन्हीं विद्वानों द्वारा शोध करके लिखा गया है, न ही इसे किसी योगी ने ईश्वरीय प्रेरणाओं के आधार पर कहा है बल्कि यह ज्ञान स्वयं अजन्मा, अभोक्ता, अव्यक्त, परमपिता परमात्मा ने प्रजापिता ब्रह्मा के तन में अवतरित होकर दिया है।

यह बात सुनकर शायद विद्वान चौंकते हैं और इसे हमारी भावना या कल्पना कहकर छोड़ देते हैं और फिर यही कहकर स्वयं में गौरव का अनुभव करते हैं कि जीवन तो आप सबका श्रेष्ठ है, परंतु हम शास्त्रों के सिद्धांतों को नहीं छोड़ सकते। अरे भई... छोड़ने को किसने कहा है... हमारा तो निवेदन है कि आप इस ईश्वरीय ज्ञान का चिन्तन करो और देखो कि ये ही बातें क्या शास्त्रों में भी कहीं कही गई हैं?

आज विज्ञान व भौतिकता की चकाचौंध में धर्म, आध्यात्म, शास्त्र, भक्ति सभी पीछे पड़ते जा रहे हैं। इतना ही नहीं कई धर्माचार्य भी भौतिकता की अधीनता को स्वीकार करते जा रहे हैं। ऐसे समय में जबकि अधर्म का प्रकोप बढ़ता जा रहा है, धर्म के सिद्धांतों पर पुनर्विचार करना क्या अत्यंत आवश्यक नहीं। धर्माचार्य क्या केवल विद्वता के बल पर ही धर्म को संरक्षण दे पायेंगे? नहीं... धर्म का बल तो साधना का बल है, पवित्रता का बल है, जिसका तो जहां-तहां दीवाला निकल गया है। कई संन्यासी व अच्छे विद्वान जब ब्रह्मचर्य पालन में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं तो आश्चर्य होता है। साधना में बैठना उन्हें पहाड़ तोड़ने जैसा लगता है और भक्तों की तरह मंदिरों में जाकर दर्शन करना व मन्त्र-पाठ करना ही अपना ध्येय बना लेते हैं। तो आचार्य विचार करें कि क्या इसी प्रकार धर्म की रक्षा होगी?

अब ईश्वरीय विश्वविद्यालय की ओर देखिये—जहां पवित्रता व योग-साधना जीवन के मुख्य पहलू हैं। यहां पवित्रता को दिनोंदिन सरल किया जा रहा है—संन्यास लेकर नहीं, गृहस्थ में कमल पुष्प समान रहकर पवित्रता का चुनौतीपूर्वक पालन करने वाले हजारों लोग क्या यहां के सत्य सिद्धांतों के प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हैं? यहां योग-साधना में बैठना लोग आनंद का साधन मानते हैं व घंटों ईश्वरीय मिलन का रसास्वादन करके पुनः धर्म व आध्यात्म की नीरसता को समाप्त कर उनमें आनंद का संचार करते हैं।

तो क्या सिद्धांत हैं इस शान्ति व पवित्रता की धारणा के पीछे? क्यों अनेक युवक-युवतियों ने इन्हें अपना लिया है क्यों अनेक विदेशियों ने, जिनका जीवन अति तामसिक व भ्रष्ट था, पवित्रता की राह पर कदम रख लिया है? कौन से ऐसे सरल व शक्तिशाली सिद्धांत उन्हें मिल गये, जो उनकी जीवनधारा बदल गई?

कई लोगों ने भक्ति व शास्त्र के आधार पर भी जीवन अच्छा बनाया है, परंतु उसमें पवित्रता को कोई स्थान नहीं। बिना पवित्रता के अच्छा जीवन एक सुगन्धहीन सुंदर पुष्प की तरह है और जहां पवित्रता है, वह जीवन एक मजबूत किले की तरह है, जिसमें विकारों रूपी चोर प्रवेश नहीं कर सकते।

तो क्या हैं वे सिद्धांत जिन्होंने जीवन पवित्र व शान्त बना दिया...

प्रथम है—आत्मा के बारे में सत्य सिद्धांत.....

शास्त्रों में आत्म-ज्ञान का इतना विस्तार कर दिया कि मनुष्य यह समझ ही नहीं पाया कि मैं हूं कौन?

भगवान् ने स्वयं आकर यह सहज ज्ञान दिया कि तुम यह देह नहीं एक ज्योतिस्वरूप आत्मा हो, तुम्हारा स्वधर्म शान्त है, तुम शान्तिधाम के वासी हो। 'अशरीरी भव' और जीवन शान्ति की राह पर चल दिया।

पुराण कर्त्ताओं ने अपने मन की दूषित भावनाओं को दबाने के लिए वर्णन किया कि देवता भी भोगी थे, शंकर भी पतित बने, विष्णु ने, इन्द्र ने भी ये-ये अनैतिक कर्म किये। फिर एक संन्यासी सोचता है कि जब सभी ने ऐसा ही किया तो हमें पवित्र रहने की भला आवश्यकता ही क्या है?

इधर परमात्मा ने हमें याद दिलाया कि सतयुग में तुम पावन देवी-देवता थे, पवित्रता तुम्हारा स्वधर्म है। जिन देवी-देवताओं के दर्शनों के लिए भी पवित्रता आवश्यक है, वे भला भोगी कैसे हो सकते हैं? अब तुम्हें पुनः देवी-देवता बनना है अतः पवित्र भव और अनेकों ने पवित्रता का व्रत धारण कर लिया।

इसी प्रकार अनेक बातें कही जा सकती हैं। सिद्धांत ही मनुष्य को पाप या पुण्य की ओर प्रवृत्त करते हैं। सिद्धांत ही मनोवृत्ति का निर्माण करते हैं। उदाहरणार्थ—एक मनुष्य सोचता है—कुछ भी करो, पर मौज से रहो, फलस्वरूप वह कुछ भी करता है। दूसरा सोचता है—नहीं, केवल पुण्य कर्म करने वाला ही सुखी रहता है, पाप कर्म सदा ही दुःख के बीज बोता है, तो वह पुण्य कर्म करता है।

हम सिद्धांतों की ही एक बात और कहकर अपनी बात समाप्त करेंगे।

प्रायः सभी शास्त्रवादी युगों की आयु लाखों वर्ष व कल्प की आयु करोड़ों वर्ष मानते हैं। परंतु परमात्मा ने बताया कि चारों युगों की आयु ही ५००० वर्ष है। यह बात सुनकर विद्वान हंसते हैं कि लो जी, इन ब्रह्माकुमारियों ने तो चारों युगों को ५००० वर्ष में ही बांध दिया।

खैर, ५००० वर्ष या लाखों वर्ष की बात में तो उलझने से फायदा ही क्या, मनुष्य ४००, ५०० वर्ष के इतिहास में ही क्या से क्या हुआ देखता है, लाखों वर्ष का तो कहीं न इतिहास हो सकता और न है। चाहे लोग इसे ५००० वर्ष मानें या लाखों वर्ष परंतु हमें देखना यह है कि जैसे ही हमें यह पता चला कि कलियुग का अंतिम समय है, यह महाभारत काल है और भगवान् पुनः आकर सत्य ज्ञान दे रहे हैं और अब सभी को मुक्तिधाम चलना है तो यह विश्वास करके हम अपने जीवन को पवित्र बनाने में लग गये।

और जो ये मान रहे हैं कि कलियुग तो अभी लाखों वर्ष चलेगा अर्थात् अभी घोर पाप और बढ़ेगा, वे जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए निरुत्साहित रहे और न ही उन्हें ईश्वरीय मिलन का सुख ही प्राप्त हो सका, तो देखिये, कितना अंतर पड़ गया। शास्त्र सिद्धांत से मनुष्य अंधकार में विलीन होने लगा, चादर तानकर सो गया कि अभी तो रात बहुत बाकी है जबकि विनाश मुंह बाये इस तरह सम्मुख खड़ा है कि उससे इन्कार करना मूर्खता होगी। कलियुग के अंत के लक्षण इतने व्यग्र रूप से प्रत्यक्ष हैं कि उन्हें अस्वीकार करना अज्ञानता होगी।

तो सभी विद्वानों से हमारा निवेदन है कि अब विशाल वृष्टि रखकर, लोक-लाज को त्याग कर, सत्य सिद्धांतों पर ज़िद्द नहीं, चिंतन करें। ताकि पुरानी घिसी-पिटी बातों के स्थान पर मनुष्यों के मन में नवीन विचारधाराओं के बीज अंकुरित किये जा सकें। ऐसा न हो कि एक मरीज दवाई खाता रहे, रोग भी बढ़ता रहे और डॉक्टर कहता रहे कि यही दवाई शत-प्रतिशत ठीक है। अब इस गिरती हुई स्थिति को समाप्त करके विश्व को पुनः स्वर्ग बनाने के लिए अर्थात् नया बनाने के लिए प्रभु स्वयं नया ज्ञान दे रहे हैं, उस पर चिन्तन करें और ईश्वरीय मिलन की साधना नहीं बल्कि ईश्वर से मिलकर उससे सर्व सम्बंधों का रस प्राप्त करें। ऐसा न हो कि शास्त्रों के सिद्धांतों पर ज़िद्द करते हुए, कहीं ये ईश्वरीय मिलन का काल ही बीत जाए, ईश्वर अपना कार्य पूर्ण कर लें और विद्वान उन्हें ढूंढ़ते ही रह जाएं। ■

"रहस्य सुख का"

ब्र.कु. राजकुमारी, मजलिस पार्क, देहली

सुखी कौन?—"जिसे कुछ नहीं चाहिए।"
कुछ नहीं चाहिए किसे?
हो इच्छा मात्रम् अविद्या जिसे।
इच्छा मात्रम् अविद्या किसे?
प्राप्त नष्टोमोहा वृत्ति जिसे।
हो वृत्ति नष्टामोहा कैसे?
स्मृति लब्धा बनने से।
स्मृति-लब्धा बनते कैसे?
मन्मना भव हो जाने से।
मन्मना भव की सिद्धि क्या?
राज्य कर्मेन्द्रियों पर सर्वदा सदा।
राज्य ... वो कहते किसे?
स्व आज्ञा का जो फल मिले।
उस फल का रस?.....सुख।
सुख की जननी?.....शान्ति।
शान्ति की कुन्जी मिले कहां से?
स्वधर्म में टिकने से।
टिकने की उपलब्धि कौन-सी?
इच्छा मात्रम् अविद्या होती।
इच्छा नहीं क्या, सुखमय संसार चाहना?
पर—यह शुद्ध, यह प्रबुद्ध, इसकी नहीं मना।
था संसार, है, रहेगा, इसे कहीं न जाना?
हो गया गायब इसमें से सुख कहीं।
है उसे सर्व के सहयोग से लाना। ■

इंदौर: *ओमशान्ति भवन में आयोजित साप्ताहिक कार्यक्रम "ज्ञानांजलि" के प्रमुख अतिथि मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय के तीन न्यायमूर्ति गणों ने "आध्यात्म द्वारा विश्वशान्ति" विषय पर अपने विचार रखे। चित्र में न्यायमूर्ति गुलाबचंद गुप्ता जी अपने विचार प्रस्तुत करते हुए (बाएं से) ब्र.कु. विमला, ब्र.कु. ओमप्रकाश जी, न्यायमूर्ति एस.अवस्थी जी व न्यायमूर्ति आर.के. वर्मा जी विराजमान हैं।*

सेन्धवा: आध्यात्मिक कार्यक्रम का उद्घाटन करते हुए समाजसेविका कांता दीदी तथा विधायक भ्राता भाईसिंग, भाई डाबर जी। साथ में ब्र.कु. सरिता बहिन।

मुधोल: 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार की स्थापना' कार्यक्रम का उद्घाटन दृश्य। ब्र.कु. ऊषा, भ्राता बी.जी. जेनेश्वर न्यायाधीश मुधोल, भ्राता वसंत गिरि महाराज तथा अन्य गणमान्य व्यक्ति भाग ले रहे हैं।

लखनऊ: ईश्वरीय सेवा के लिये एक बस तैयार कराई गई है। महेन्द्रा कम्पनी के मुख्य प्रबंधक उसका उद्घाटन करते हुए।

भावनगर सेवाकेंद्र द्वारा शैक्षणिक वर्ग की सेवा अर्थ आयोजित कार्यक्रम में आयुर्वेद कालेज के प्राचार्य डा. बारोट जी अपना वक्तव्य देते हुए।

बल्लभगढ़ सेवाकेंद्र की ओर से बलदेव छट्ट मेले के अवसर पर आयोजित आध्यात्मिक प्रदर्शनी में एस.डी.एम. बहिन एस. राजन को ब्र.कु. ऊषा "शिवशंकर में अंतर" झांकी के बारे में बताते हुए।

जागृति

"तो मेरे साथियो, अब अंतिम धर्मयुद्ध आरंभ हो चुका है। सरस्वती के मंगल मंदिर को अपने काले कृत्यों से कलंकित करनेवाले इन नरराक्षसों का मुंह काला करना है। अगर सात दिन के अंदर इन भ्रष्टाचारी असुरों पर कार्रवाई नहीं की गई तो यहां उपस्थित यह नौजवान पुस्तकें छोड़कर मशाल हाथ में उठायेंगे और इन भ्रष्टाचारी लोगों का संहार करेंगे। किसी से भी डरने की आवश्यकता नही है क्योंकि तुम सत्य के लिए, न्याय के लिए लड़ रहे हो। तुम मर्दों की औलादें हो। इस सरस्वती-मंदिर की तुम शान हो। आनेवाले पीढ़ी की आशाओं के तुम दीपक हो। इसलिए तुम्हें कमजोर नहीं बनना है, डरपोक नहीं बनना है। बार-बार लाचार होने से न्याय के लिए एक बार मरना ही अच्छा है। सामर्थ्य का नाम है जीवन, निर्बलता का नाम है मृत्यु। अब हमसे जो टकरायेगा, वह मिट्टी में मिल जायेगा।" अशोक जोश और आवेश से बोल रहा था, उसके मुख से अंगारे बरस रहे थे। जब अशोक ने अपना भाषण पूर्ण किया तब सारी सभा ने तालियाँ बजाकर, नारे लगाकर उसका अभिनंदन किया।

शहर में विद्यार्थियों का आंदोलन छिड़ जाने के कारण अभूतपूर्व तनाव और संघर्षपूर्ण वातावरण था। कॉलेज प्रवेश, परीक्षा पद्धति में भ्रष्टाचार, डोनेशन, कॉलेज में अपूर्ण व्यवस्था आदि के कारण तंग आकर विद्यार्थियों ने कानून हाथ में उठाया था। सारे शहर में भय, संघर्ष का वातावरण था। इस आंदोलन को पालक-वर्ग की भी सहानुभूति प्राप्त हुई थी क्योंकि शिक्षा-क्षेत्र में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार के कारण पालक-वर्ग भी तंग आ चुका था।

अशोक घर पहुंचा तब रात्रि के ९ बजे थे। थकावट को दूर करने के लिए उसने ठंडे पानी से स्नान किया और अपने शयन-कक्ष में जाकर चारपाई पर लेटा। उसके मन में विचारों का तूफान मचा था।

निर्बल समाज पर होने वाले अत्याचार को देखकर उसका मन बदला लेने की भावना से जल रहा था। सामाजिक, आर्थिक समस्याओं से पीड़ित लोगों की मजबूरी का उपयोग अपने स्वार्थी एवं कुटिल उद्देश्य की पूर्ति के लिए दुष्प्रवृत्ति समाज में बढ़ रही है। अधिकार का उपयोग पीड़ितों की सहायता के लिए नहीं बल्कि उन्हें लूटने के लिए, दबाने के लिए किया जा रहा है। रिश्वत, भ्रष्टाचार जीवन का अंग बनकर समाज में प्रतिष्ठा पा रहा है।अशोक के संवेदनाशील मन को अब यह परिस्थिति बिल्कुल मंजूर नहीं थी। समाज कहां तक सहेगा यह अत्याचार और जबर्दस्ती? कहां तक जिंदा रहेगा यह लाचार जीवन। अनेक दिलों की यही आहें थीं। परंतु परिस्थिति के विरुद्ध आवाज उठाने की हिम्मत कोई में भी नहीं थी। सब परिस्थिति के गुलाम थे। आज अशोक अपने अंदर क्रांति करने की शक्ति महसूस कर रहा था। लेकिन समाज में क्रांति लाने के लिए कौन-से उपाय किए जाएं, इस पर उसका मन निर्णय नहीं कर पा रहा था। अचानक उसको प्रोफेसर सप्तर्षीजी की याद आयी। प्रो. सप्तर्षीजी अशोक के लिए आदरणीय थे। उनके दिव्य और नीतियुक्त व्यवहार की अशोक के मन पर गहरी छाप पड़ी थी। उसने निर्णय किया कि कल प्रो. सप्तर्षीजी से कुछ मार्गदर्शना लूंगा। आखिर विचारों के झूलों में झूलाकर निद्रादेवी ने उसे कब अपनी गोद में समा लिया, उसे पता ही न पड़ा।

दूसरे दिन सुबह अशोक प्रो. सप्तर्षीजी के घर पहुंचा। प्रो. सप्तर्षीजी अपने अभ्यास-कक्ष में अध्ययन करने में मग्न थे। तेजस्वी, शान्त एवं गंभीर चेहरे पर विद्वत्ता की रोशनी चमक रही थी। जैसे कोई तपस्वी अपनी तपस्या में बैठा हो, क्योंकि प्रो. सप्तर्षीजी का जीवन ही एक ऋषि के समान था। आदर्श व्यवहार, पितृवत स्नेह, ज्ञान की तेजस्विता के कारण कॉलेज में उनका एक अनोखा स्थान था। हर विद्यार्थी के मन में उनके लिए आदर था। इसलिए अशोक अपने ईष्टदेव के रूप में उन्हें देखता ही रहा। उनकी तपस्या भंग करने का साहस अशोक में नहीं था, इसलिए वह भी आँखें बंद करके अपने विचारों में खो गया।

"कैसे आना हुआ तुम्हारा, अशोक?" प्रो. सप्तर्षीजी के मधुर बोल से अशोक का ध्यान टूट गया। उसने प्रो. सप्तर्षीजी की आँखों में देखा, उनकी आँखें स्नेह और अपनापनसा बरसा रहीं थी। अशोक का दिल स्नेह से भर आया। थोड़े समय तक उसके मुख से शब्द तक नहीं निकल सके। आखिर प्रो. सप्तर्षीजी के स्नेह ने ही उसे बुलवाया।

"सर, आपसे कुछ बातें करनी थीं"...अशोक

प्रो. सप्तर्षीजी को अशोक के मन की स्थिति पहचानने के लिए देरी नहीं लगी।

"अच्छा, चलो गार्डन में बैठते हैं", प्रो. सप्तर्षीजी ने अशोक के कंधे पर हाथ रखकर चलने का इशारा किया। प्रो. सप्तर्षीजी के स्नेहयुक्त बोल और स्पर्श में अशोक यह महसूस कर रहा था कि जैसे कोई खुदा-दोस्त उसे प्यार से

अपने साथ ले जा रहा है।

गार्डन चेअर पर बैठकर प्रो. सप्तर्षीजी ने कहा—"कहो अशोक, क्या कहना चाहते हो?"

"सर, आप जानते हैं कि शहर में क्या हो रहा है? अब तो भ्रष्टाचार, अन्याय, बेईमानी के विरुद्ध अंतिम युद्ध आरंभ हो चुका है, उसका नेतृत्व मैं करना चाहता हूं। आपसे आशीर्वाद लेने आया हूं। मुझे विश्वास है कि आपकी मंगल कामनाएं इस पवित्र कार्य में मेरे साथ सदा रहेंगी।" अशोक ने एक ही साथ अपनी भावनाएं व्यक्त कीं।

"क्या करना चाहते हो तुम,अशोक?"—प्रो. सप्तर्षीजी।

"सर, ज्यादा कुछ नहीं सिर्फ सरस्वती मंदिर को कलंकित करने वाले बेईमान, भ्रष्टाचारी दुष्टों का संहार, क्योंकि इन भ्रष्टाचारी बेईमान लोगों के काले हाथ सरस्वती की पवित्र मूर्ति को भी अपवित्र बना रहे हैं। इन हाथों को अब यहां ही छांटना होगा।"—अशोक

"कैसे करोगे यह सब तुम, अशोक? क्या उपाय है तुम्हारे पास?"—प्रो. सप्तर्षीजी

"सर, इन भ्रष्टाचारी, बेईमान लोगों का हम सामाजिक बहिष्कार करेंगे। उनके बड़े-बड़े फोटोग्राफ निकालकर शहर में मुख्य भागों पर लगायेंगे और उनको सामाजिक अपराधी घोषित करेंगे। जगह-जगह उनके बुत जलायेंगे। उनके घरों पर पिकेटिंग करेंगे और उनके विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए पुलिस और सरकार को बाध्य करेंगे। अगर इससे भी काम नहीं बना, तो सारे शहर में हड़ताल होगी। शालाएं, कॉलेज, दफ्तर, फैक्टरी, सब बंद। न चलेंगी मोटरें, न चलेंगी रेलगाड़ियाँ। जब तक हमारी मांगें पूर्ण नहीं होंगी तब तक इस शहर में कुछ कारोबार नहीं चलेगा, सब बंद।" अशोक

"अशोक, तुम्हारी भावनाओं को मैं समझ सकता हूं। परंतु तुम्हारे उपायों को नहीं। तुम अन्याय का निवारण करना चाहते हो, परंतु तुम्हारे उपाय समाज पर अन्याय करने वाले हैं। तुम जुल्म-जबर्दस्ती को मिटाना चाहते हो, परंतु तुम्हारा मार्ग जुल्म-जबर्दस्ती को जन्म देने वाला है। तुम धर्म की रक्षा करना चाहते हो, परंतु तुम्हारे प्रयत्न अधर्म को निमंत्रण देने वाले हैं। अशोक, अधर्म से धर्म की स्थापना हर्गिज नहीं की जा सकती। आग से आग नहीं बुझाई जाती। न आग बुझाने के लिए तेल डाला जाता है।"—प्रो. सप्तर्षीजी

"परंतु, सर, यह भ्रष्टाचारी, बेईमान लोग मन से इतने कसाई, असुर हैं कि ये लातों के भूत बातों से नहीं मानेंगे। इनको अब ऐसा सबक सिखाना होगा कि आगे कोई भ्रष्टाचार, बेईमानी करने की हिम्मत नहीं करेगा।"—अशोक

"अशोक, तुम्हें भ्रष्टाचार, बेईमानी, अन्याय आदि से नफरत है या इन बुराइयों को धारण करने वाले मनुष्यों से? तुम इन बुराइयों को समाज से नष्ट करना चाहते हो या मनुष्य को?"—प्रो. सप्तर्षीजी

"अर्थात् इन बुराइयों को और उनके साथ ऐसे भ्रष्टाचारी लोगों को भी?"—अशोक

"अशोक, किसी व्यक्ति से नफरत करने से ये बुराइयां नष्ट होंगी? पुतले जलाकर क्या तुम्हारे उद्देश्य की सिद्धता होगी?"—प्रो. सप्तर्षीजी

"अशोक, आज तुम्हारे मन में अन्याय के विरोध की भावना है, तुम श्रेष्ठाचारी जीवन चाहते हो यह अच्छी बात है। तुम्हारा उद्देश्य अच्छा है। परंतु उसकी पूर्ति के लिए तुम्हें यथार्थ मार्ग का ज्ञान होना अनिवार्य है। इसलिए अन्याय, भ्रष्टाचार, बेईमानी आदि भावनाओं का उद्गम कहां है और उनके निर्मूलन का सफल उपाय कौन-सा है यह तुम्हें समझना होगा। साथ-साथ श्रेष्ठाचारी जीवन की स्पष्टता भी तुम्हारी बुद्धि में होनी आवश्यक है। दूसरा, मनुष्य के मन को भी तुम्हें समझना होगा, क्योंकि भ्रष्टाचार वा श्रेष्ठाचार इसका मनुष्य के मन के साथ गहरा संबंध है। क्या तुम मुझे यह बता सकोगे कि यह मन क्या है और उसमें अच्छी या बुरी भावनाएं क्यों और कब विकसित होती हैं?"

"नहीं, इस विषय पर कभी सोचा नहीं।"—अशोक

"मन" अर्थात् तुम्हारी विचार शक्ति, शरीर को चलाने वाली एक अनादि चेतना शक्ति का केवल एक अंग है। यह चेतना शक्ति तुम्हारे मस्तिष्क में है, परंतु वह मस्तिष्क नहीं है, क्योंकि उस चेतना शक्ति की अनुपस्थिति में मस्तिष्क एक अचेतन मांसल इंद्रिय रह जाता है।

इसी चेतना शक्ति की उपस्थिति के कारण इस मुख से "मैं" शब्द उच्चारित होता है। जब तुम "मैं" कहते हो, तो उसी चेतना शक्ति को संबोधित करते हो। इसलिए तुम वही चेतना शक्ति हो। वह चेतना शक्ति ही आँखों के द्वारा देखती है, कानों के द्वारा सुनती है और मुख के द्वारा बोलती है। अर्थात् वह चेतना शक्ति ही इस शरीर की कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करने वाली शक्ति है। आध्यात्मिक परिभाषा में इस चेतना शक्ति को "आत्मा" कहा जाता है।

इस चेतना शक्ति में विचार-शक्ति, निर्णय-शक्ति है। इसके साथ उस चेतना शक्ति में जीवन की पूर्व घटनाएं तथा पूर्व स्मृतियाँ भी ग्रंथित हैं। इसलिए तुम्हें भूतकाल की अनेक घटनाएं भी याद हैं।

उस चेतना शक्ति का मूल स्वरूप शुद्ध एवं शान्त है। इसलिए सर्व को शांति प्रिय है। वह चेतना शक्ति मूलतः निर्दोष है, इसलिए तुम सच्चाई, ईमानदारी से न्याय आदि सकारात्मक भावनाएं जीवन में चाहते हो।

परंतु आज इस चेतना-शक्ति की शांति, प्रेम, सहयोग आदि मूल सकारात्मक भावनाएं क्षीण होकर स्वार्थ, नफरत, द्वेष, हिंसा आदि नकारात्मक भावनाओं का प्राबल्य उसमें बढ़ा

है। जब तक ऐसी नकारात्मक भावनाएं इस चेतना-शक्ति में प्रवाहित होकर, शरीर के कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करेंगी तो वह कर्म भी नीच कर्म ही होंगे। इसलिए आज के मनुष्य-जीवन में भ्रष्टाचार, हिंसा, अन्याय आदि समस्याएं तुम देख रहे हो।

इसलिए अगर तुम समाज को अन्याय, भ्रष्टाचार जैसी दूष्प्रवृत्तियों से मुक्त करना चाहते हो तो सर्वप्रथम तुम्हें अपनी चेतना-शक्ति को इन नकारात्मक भावनाओं से मुक्त करना होगा। जब तक काम, क्रोध, लोभ... आदि नकारात्मक भावनाएं उस चेतना-शक्ति में प्रवाहित हैं तब तक व्यक्ति बदलेंगे, परंतु समाज की समस्याएं वही रहेंगी। क्योंकि नये माध्यम के द्वारा मन की नकारात्मक भावनाएं पुराना खेल ही जारी रखेंगी। इस विचार को स्पष्ट करने के लिए मैं तुम्हें एक उदाहरण देना चाहता हूं।

एक जंगल में एक बूढ़ा शेर आराम कर रहा था। अति वृद्धावस्था के कारण उसकी कर्मेन्द्रियां शिथिल बन गई थीं। वह हिलने-चलने में असमर्थ था। उसके शरीर के बालों में अनगिनित कीड़े पैदा होकर उसका खून चूस रहे थे। शेर बेचारा बार-बार परेशान हो रहा था। पेड़ पर बैठे हुए कौवे को शेर की यह स्थिति देखकर दया आयी, उसने शेर के समीप जाकर कहा—"महाराज ये कीड़े आपका खून चूसकर आपको परेशान कर रहे हैं। आपको शक्तिहीन बना रहे हैं। अगर आप कहो तो मैं इन कीड़ों को निकालकर आपकी सहायता करूं, ताकि आप शांति से विश्राम कर सकें।" शेर ने कहा, "हे कौवे, तुम्हारी सहायता मेरे लिए एक बड़ा संकट हो सकता है।" कौवे ने शेर की बात का अर्थ न समझने के कारण शेर से पूछा, "महाराज, अगर मैं आपके शरीर के ऊपर के कीड़े निकाल दूं तो आपको आराम मिलेगा।" शेर ने कहा, "बिल्कुल नहीं, आज जो कीड़े मेरे शरीर पर हैं वे मेरा खून पी-पीकर इतने सशक्त बने हैं कि उन्हें ज्यादा खून पीने की भूख नहीं है। परंतु अगर तुम इन कीड़ों को निकाल दोगे तो उनकी जगह नये कीड़े आयेंगे, वे खून के अधिक प्यासे होंगे और वे मेरा अधिक खून चूसेंगे।"

अशोक, यही अवस्था है समाज और भ्रष्टाचारी लोगों की। व्यक्ति बदलने के बाद उनकी जगह पर आने वाले व्यक्ति अधिक भ्रष्टाचारी सिद्ध हो सकते हैं। इसलिए अगर तुम भ्रष्टाचार को मिटाना चाहते हो, तो तुम्हें सबके मन-बुद्धि को काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि नकारात्मक भावनाओं से मुक्त करना होगा।"

प्रो. सप्तर्षीजी ने अपना विवेचन पूर्ण किया तब अशोक का मन गहरे विचारों में खो गया था।

"सर, आप तो मुझे जीवन में नयी दृष्टि प्रदान करने वाले सच्चे-सच्चे मसीहा मिले। आपने तो मुझे जीवन की ओर देखने के लिए दिव्य नेत्र दिया। सभी समस्याओं का मूल कारण ही आपने मेरे सामने साकार किया। परंतु एक बात में मेरा मन अभी भी मूंझा हुआ है"... अशोक ने गंभीरता से कहा।

"कहो अशोक, अब तुम्हारे क्या प्रश्न हैं?"—प्रो. सप्तर्षीजी

"सर, इतने सब मनुष्यों के मन-बुद्धि को बदलना कैसे संभव है? करोड़ों व्यक्तियों के मन की बुरी भावनाएं मिटाना मुझे आज तो केवल एक स्वप्न लग रहा है?"...अशोक

"बिल्कुल नहीं अशोक, यह सहज ही संभव है। नियमित प्रयत्न से सब-कुछ हासिल किया जा सकता है। पहले तुम्हें अपनी चेतना-शक्ति को शुद्ध बनाना होगा। अपने मन-बुद्धि से तुम्हें क्रोध, नफरत, बदला लेने की भावनाएं आदि अशुद्ध तत्वों को निकालना होगा। तुम्हें अपना व्यवहार शुद्धता, प्रेम और शान्ति से संपन्न करना होगा। तभी तुम्हारे कहने का लोगों पर प्रभाव पड़ेगा।" प्रो. सप्तर्षीजी।

"सर, परंतु यह सब कैसे होगा?"—अशोक...

"इसके लिए आज मैं तुम्हें कुछ सद्विचार देता हूं, इसे तुम बार-बार दुहराओ।" प्रो. सप्तर्षीजी

तुम जानते हो कि शरीर अनेक अवयवोंसे बना हुआ केवल एक मशीन है। इस शरीर में अलग-अलग कर्मेन्द्रियां एवं ज्ञानेंद्रियां अपना-अपना निर्धारित कार्य एक ही समय कर रही हैं। इससे तुम समझ जाओगे कि अलग-अलग इंद्रियों से एक ही साथ अलग-अलग कार्य कराने वाली शरीर से भिन्न शक्ति इस शरीर में है। वह शक्ति मस्तिष्क नहीं है क्योंकि मस्तिष्क भी एक मांसल इंद्रिय है और उसका भी एक निर्धारित कार्य है। मस्तिष्क को भी कार्यान्वित कराने वाली एक अधिभौतिक सत्ता मस्तिष्क में ही मौजूद है। वही अधिभौतिक शक्ति "मैं" हूं। इस अधिभौतिक शक्ति के ही अधिभौतिक इंद्रियां "मन और बुद्धि" हैं। इस समझ के आधार पर तुम अब यह निश्चय करो कि "मैं" अर्थात् शरीर की कोई कर्मेन्द्रियां नहीं बल्कि कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म कराने वाली अधिभौतिक शक्ति 'मैं" हूं। इस प्रकार "मैं" को निर्धारित करने के पश्चात् तुम अपने में इस प्रकार संकल्प चलाओ:—

१. "मैं" शुद्धता का स्वरूप हूं।
२. "मैं" शांति का स्वरूप हूं।
३. "मैं" प्रेम का स्वरूप हूं।
४. "मैं" आनंद का स्वरूप हूं।
५. "मैं" सर्व सकारात्मक भावनाओं से युक्त शक्ति का पुञ्ज दिव्य ज्योति हूं। इसलिए मुझे अपने हर बोल एवं हर कर्म द्वारा शांति, प्रेम, अहिंसा आदि सकारात्मक भावनाएं ही प्रसारित करनी हैं।

(शेष पृष्ठ १२ पर)

"दुनिया ये होती है किस कदर... तमाम देखोगे!"

कत्ल की शुरुआत है, अभी कत्ले आम देखोगे।
हादसा छोटा-सा देखकर, क्यों इतना घबरा गये।
हादसे तो कई ऐसे सुबह-शाम देखोगे।
कोई घर-दो-घर की बात नहीं हैं ये
ऐसी वारदातें तो, अब सरेआम देखोगे।
गर बांधे रहे पट्टियां इसी तरह ये नुमाइन्दे देश के,
अपने सामने ही, होते देश को बदनाम देखोगे।
कत्ल की शुरुआत है अभी .....!

न जाने कितने बेजुबां हलाक हो गये,
हंसते हुये गुलिस्तां खाक हो गये।
क्या इंसानियत का, इससे बड़ा अंजाम देखोगे!
कत्ल की शुरुआत है अभी .....!
नापाक इरादे हैं, हमारे और तुम्हारे।
हम चाहते नहीं करना जो हम कहते हैं,
कि यहां से ज्यादा कहां और नमक हराम देखोगे।
कत्ल की शुरुआत है अभी .....!

तुम्हारे गुनाहों की सजा बेगुनाहों को मिली,
तुम दामन अपना, इतना पाक साफ ले गये,
खैर, मनाओ अब सजाए वक्त से,
मौत सामने खड़ी है तुम्हारे
बोलो डायरी में किसका नाम देखोगे।
कत्ल की शुरुआत है अभी .....!

भाई-भाई का नारा लगाते भी हो,
खूं औ लहू उन्हीं का बहाते भी हो।
क्या मजहब का यही, मतलब है?
न जाना खुद को, तो खूनी नाहक अंजाम देखोगे।
कत्ल की शुरुआत है अभी .....!

खबर तुम्हें खुद की नहीं इतने मदहोश हो,
खुदा आया है, और तुम बेहोश हो।
सम्हल जाओ अब भी नहीं तो,
बस जिंदगी का आखिरी पैगाम देखोगे।
कत्ल की शुरुआत है अभी .....!

कहीं तूफां,कहीं आंधियां कड़कती सिर पर बिजलियां,
थम न पायेगा थामे, किसी का जिगर
कुदरत का अभी तो इंतकाम देखोगे।
कत्ल की शुरुआत है अभी .....!

वो लोग ताक में हैं, ऊपर दुनिया बसाने की,
गला घोंट के मासूम का, जश्न मनाने की।
मगर तोप के गोलों से राज्य दुनिया का मिलता नहीं,
खुद पर हुकूमत जिसका नहीं, वो हुकूमत कर सकता नहीं
फौजी ताकतें भी होंगी एक दिन नाकाम देखोगे।
कत्ल की शुरुआत है अभी .....!

खुद को बचा न पायेंगे, दूसरों को बचाने वाले,
मिट जायेंगे तेरे आशियाने वो बनाने वाले।
दुनियां होती है, किस कदर तमाम देखोगे।
कत्ल की शुरुआत है अभी .....!

ब्र.कु. 'प्रकाश', भोपाल

जागृति (पृष्ठ ११ का शेष)

इन सद्विचारों का मन में बार-बार मंथन करने से तुम्हारा मन शुद्धता का स्रोत बन जायेगा। तुम्हें अपने मन में दिव्यता अनुभव होगी। तुम्हारा मन हल्का होगा। तुम्हें ज्ञान का दिव्य प्रकाश मिलेगा। जैसे एक जगा हुआ दीपक अनेक बूझे हुए दीपकों को जगा सकता है, वैसे ही तुम्हारी जगी हुई चेतना-शक्ति औरों के सुप्त चेतना-शक्तियों को जगायेगी। अशोक, यह महान् कार्य तुम्हें ही करना होगा। तुम्हारे द्वारा ही अज्ञान अंधेरे में भटके हुए मनुष्यों को सच्ची राह प्राप्त होकर उनका सदा के लिए कल्याण होगा।" प्रो. सप्तर्षीजी...

अशोक सुनते-सुनते एक अद्भुत मानसिक स्थिति का अनुभव कर रहा था। उसके मन पर का बोझ, तनाव उतरकर वह अपने में एक हल्कापन अनुभव कर रहा था। उसके नयनों में स्नेह के आंसू भर आये थे। उसका मन दिव्य एवं कल्याणकारी भावनाओं से विनम्र बन चुका था। अशोक से रहा नहीं गया। उसने उठकर प्रो. सप्तर्षीजी के चरण स्पर्श किये और भाव-विभोर होकर उनकी ओर देखता ही रहा। प्रो. सप्तर्षीजी ने अशोक को प्यार से उठाया और अपनी स्नेहयुक्त मधुरवाणी में कहा "आओ अशोक, आज से तुम मेरे विद्यार्थी नहीं बल्कि भाई हो, मेरा मंगल आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। सदा विजयी भव। विजय तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है।"

■ ■ ■ ■

माया के चार रूप

ब्र.कु. कानन, कलकत्ता

माया के अनेक रूप हैं परंतु फिर भी वह अरूप है। उसे ज्ञान ही के नेत्र द्वारा देखा जा सकता है।

माया का सबसे बड़ा और सबसे सूक्ष्म रूप **संशय** है। जहाँ संशय रूपी काँटा है, वहीं दुःख है। ज्ञान से संशय को निवारण करना ही नष्टोमोहा होना अथवा योग-युक्त और ज्ञान-निष्ठ होना है। ज्ञान मनुष्य का हाथ ईश्वर के हाथ में देता है परंतु संशय के कारण मनुष्य स्वयं को बुद्धिमान समझकर ईश्वर से हट जाता है। **किसी भी रूप में माया आने से पहले मनुष्य के मन में संशय आता है। संशय के बिना मनुष्य में माया अथवा विकार उत्पन्न हों, यह हो ही नहीं सकता। जब मनुष्य के मन में इस बात का संशय पैदा हो जाता है कि परमात्मा मेरे कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य सबको जानता है अथवा कि उस सर्वशक्तिमान् का सहारा लेने से और उसकी सर्वश्रेष्ठ मत पर चलने से ही मेरा पूर्ण कल्याण है तब ही उसमें पुराने बुरे संस्कार और अज्ञान-काल की वृत्तियाँ जाग्रत होती हैं।** इसलिए, यदि मनुष्य माया से बचकर ईश्वर का होना चाहता है तो उसे संशय से बचना चाहिए और यदि संशय उठे तो ज्ञान द्वारा निवृत्त करा लेना चाहिए।

माया का दूसरा सूक्ष्म रूप है—असावधानी, अवज्ञा, अलबेलापन अथवा अविचार। संशय पैदा हो जाने की दशा में मनुष्य परमपिता परमात्मा की आज्ञाओं को महत्व नहीं देता, उनका पालन नहीं करता, उन पर ध्यान नहीं देता; वह अवज्ञा कर बैठता है और अलबेला होकर चलता है। इसके परिणामस्वरूप उसकी बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है, वह अपनी भलाई को नहीं सोच सकता और संशय में पड़ा हुआ, मानसिक भोगना को भोगता है अथवा बाद में कभी ठोकर लगने पर ही सावधान होता है और सोचता है कि संशय रूपी माया और अवज्ञा रूपी अकर्त्तव्य और असावधानी तथा आलस्य के कारण ही मेरी यह दुर्गति हुई है!

माया का तीसरा रूप अथवा तीसरा कदम है—संबंध की विस्मृति, निंदा और ग्लानि। जब मनुष्य संशय में पड़कर भगवान् की आज्ञाओं की अवहेलना करता है तो परिणामस्वरूप उसके मन में ज्ञान के प्रति आकर्षण और प्रभु के साथ पूरा प्यार नहीं रहता। इसलिए, उसे परमात्मा की विस्मृति हो जाती है और परमात्मा के पिता, शिक्षक अथवा गुरु रूप की पहचान न रहने की टेव पड़ जाती है और वह मनुष्य यहाँ तक भी विस्मृति अथवा अज्ञानता के वश हो जाता है कि वह इस प्रकार की बातें करने लगता है—"भगवान् ने यह जो आज्ञा अथवा मत दी है, यह ठीक नहीं है; अमुक जो वृत्तान्त हुआ भगवान् को वह होने नहीं देना चाहिए था; भगवान् के जो अमुक महावाक्य थे, उनके अनुकूल ही यह बात क्यों नहीं हुई?..." इस प्रकार वह अज्ञानियों की भाँति गुप्त अथवा प्रत्यक्ष रूप में भगवान् के गुणों, कर्त्तव्यों और महावाक्यों की समीक्षा, टिप्पणी, नुक्ताचीनी अथवा निंदा करता है और उस पर व्यंग करता है। यहां तक कि उसे परमपिता परमात्मा के अस्तित्व में भी संशय होने लगता है। और ईश्वर-चर्चा को कोरी कल्पना, तथा ज्ञान-ध्यान को भोले-भाले, सीधे-साधे तथा बहकाये हुए लोगों की ही चीज मानते हुए वह स्वयं को एक सतर्क एवं सजग व्यक्ति समझते हुए अलग श्रेणी का समझता है।

माया का चौथा रूप है परमात्मा का संग छोड़ने का संकल्प अथवा विकल्प। संशय होने पर मनुष्य के मन में जो अशुद्ध संकल्प चलने लगते हैं और उससे अवज्ञा तथा निंदा के रूप में जो अकर्त्तव्य होते हैं, उनके परिणामस्वरूप उसकी बुद्धि को माया का मजबूत ताला लग जाता है, उसकी खुशी और खुमारी जाती रहती है। उसे प्रकृति के पदार्थों की चमक-दमक और लौकिक संबंधियों का कर्मबंधन अपनी ओर खींचने लगता है और वह मनुष्य परमात्मा का संग, उसकी याद, उसकी प्रीति, उसकी मत और उसका स्थान छोड़ने का संकल्प कर लेता है। ज्ञान के मार्ग पर चलने वाले मनुष्य की यह स्थिति बड़ी नाजुक होती है। ऐसी स्थिति हो जाने पर भी यदि मनुष्य परमात्मा की पाठशाला को और उसके संग (सतसंग) को न छोड़े तब भी उसका कल्याण हो सकता है, माया के वारों से हुए उसके घावों की मरहम-पट्टी हो सकती है, उसका विवेक पुनः जाग्रत हो सकता है, उसकी प्रीति परमात्मा से जुट सकती है, उसका योग फिर परमात्मा से लग सकता है। परंतु, जो मनुष्य ईश्वरीय संग ही छोड़ दे अथवा ईश्वरीय पाठशाला से ही मुख मोड़ ले तो मानो वह प्रभु के देश को छोड़कर माया के देश में चला जाता है जहाँ उसको कोई भी अच्छी मत देने वाला और ज्ञान रूपी मरहम लगाने वाला नहीं रहता। आखिर वह मनुष्य माया के बंदीगृह का ही एक बंदी बन जाता है। ऐसा मनुष्य सृष्टि रूपी युद्ध-स्थल पर संशय के साथ युद्ध करता हुआ युद्ध को ही छोड़कर भाग जाता है, वह कायर कहलाता है। ज्ञानी लोग उसे लानत देते हैं और उसके बारे में कहते है कि उसने प्रभु को छोड़कर मानो तकदीर को लकीर लगा दी!

ईश्वर को छोड़कर विषय-वैतरणी को लौटने वाला वह मनुष्य किसी ज्ञानवान्, योग-युक्त एवं शुभचिंतक व्यक्ति की राय भी पसंद नहीं करता। वह सभी की बात मानने से इंकार

कर देता है। बस ऐसी, अवस्था हो जाने पर माया से छूट जाना किसी बिरले ही सौभाग्यशाली को प्राप्त होता है। यदि मनुष्य पत्थर पर लकीर की भांति यह निश्चय कर ले कि–"परमात्मा मेरा हित सोचता है, वह कल्याणकारी है और जो मुझसे अधिक ज्ञान-युक्त एवं योग-निष्ठ व्यक्ति हैं वह भी मेरी उन्नति के लिए ही मुझे सम्मति देते हैं; इसलिए मन न करे तो भी मुझे उनकी बात मान लेनी चाहिए" तो वह फिर भी माया के फंदे से छूट सकता है।

माया मनुष्य को परमात्मा से छुड़ाने की इंतजार में रहती है। यदि मनुष्य कभी इस बात को भूल जाता है अथवा महत्व नहीं देता तो समझना चाहिए कि बेचारा माया के वश है, जिसका मूल कारण संशय है और जिसकी औषधि ज्ञान है।

माया बड़ी प्रबल है। यह किसी को एक भांति और अन्य को दूसरी भांति अपने जाल में फंसाती है। परमपिता परमात्मा से शक्ति प्राप्त किये बिना और राय लिये बिना माया के भँवर से निकल सकना मनुष्य के लिये असंभव है।

अतः यह ध्यान देने के योग्य बात है कि परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव में अथवा उसके साकार रूप में अथवा उसके महावाक्यों में संशय लाने का अर्थ अपने ही हाथों से अपनी तकदीर को लकीर लगा देना है अथवा ज्ञान के नेत्र से हीन होकर और अनमोल वस्तु को न पहचानकर अपने भाग्य को गँवा देना है। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य से बहुत ही विकर्म होते हैं और वह जन्म-जन्मांतर नरक में, विकारों की अग्नि में जलता है। **अतः संशय ही सबसे बड़ा काँटा, सबसे बड़ा रोग, सबसे बड़ी निर्बलता और सबसे बड़ा शाप है। इससे छुड़ाने के लिए ज्ञान ही महौषधि है।**

परमात्मा में संशय लाना ही सबसे बड़ी भूल है

मनुष्यात्माओं के कर्मों को देखकर उनकी मत में संशय होना तो संभव है क्योंकि मनुष्य अल्पज्ञ, असमर्थ और स्वार्थी हैं, परंतु त्रिकालदर्शी, परम-बुद्धिमान एवं परम कल्याणकारी परमात्मा की मत में अथवा उनके रहस्य-युक्त दिव्य कर्मों में संशय लाना गोया स्वयं को परमात्मा से भी बुद्धिमान मानना है अथवा परमात्मा को अशुभचिंतक समझना है।

कई लोग कहते हैं कि परमात्मा के होते हुए भी हमारे जीवन में अमुक घटना क्यों घटी; परमात्मा के जो अमुक महावाक्य हैं, उनसे विपरीत अमुक बात क्यों हुई? ऐसा कहने वाले मनुष्य, जो परमात्मा की गति और मति को न जानकर अपनी ही तुच्छ बुद्धि से मानो परमात्मा को भी अपनी इच्छा का गुलाम बनाना चाहते हैं, वास्तव में स्वयं ही माया के गुलाम और तुच्छ-बुद्धि वाले हैं। संशय-रूपी नेत्र-रोग के कारण वे कुछ भी देख नहीं सकते।

सच्ची कमाई

ले.-ब्रह्माकुमारी कृष्णा, अम्बाला

संसार में लोग जो पैसों-रुपयों की कमाई करते हैं, इससे तो केवल शरीर निर्वाह ही होता है। सुबह-शाम लगे रहने पर भी आज के युग में करोड़ों लोगों के लिए दो रोटी का साधन बना रहना भी कठिन है। करोड़ों मनुष्यों को कल की चिंता लगी रहती है। जिनके पास धन काफी है, उन्हें अधिक कमाने की लालसा और कमाये हुए की चिंता चिपटे रहती है। अतः मनुष्य को अविनाशी सुख देने वाली अविनाशी कमाई का पता ही नहीं है।

आज यदि हम मनुष्य को सच्ची कमाई करने के लिए कहते हैं तो दुःखी होते हुए भी मनुष्य घर-गृहस्थ के हजारों बहाने लगाता है। वह कहता है कि मेरे पास समय ही नहीं है। नादान मनुष्य अविनाशी सुख-शांति की प्राप्ति के हेतु कुछ भी अविनाशी कमाई नहीं करता।

वास्तव में ईश्वरीय ज्ञान-धन का संग्रह करना ही अविनाशी कमाई करना है। परमपिता परमात्मा शिव जब ज्ञान देते हैं तो एक जीवन में उस ज्ञान-धन को बुद्धि रूपी तिजोड़ी में धारण करने से मनुष्यात्मा को भविष्य में २१ जन्मों के लिए अखुट एवं अविनाशी सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है। वह वैकुण्ठ का राज्य-भाग्य प्राप्त कर लेता है। उसे किसी भी प्रकार की चिंता नहीं रहती। रुपये-पैसे के धन को तो चोर भी लूट ले जाते हैं और आग भी जला देती है परंतु ज्ञान-धन अविनाशी धन है जो कि अविनाशी आत्मा में संस्कारों के रूप में रहता ही है!

जैसे विनाशी देह के पिता से विनाशी धन की विरासत एक-आध जन्म के लिए मिलती है, वैसे ही यह ज्ञान रूपी अविनाशी धन अविनाशी आत्मा के अविनाशी पिता परमात्मा से ईश्वरीय विरासत के रूप में प्राप्त होता है।

प्रसिद्ध है कि देवताओं के भण्डारे सदा भरपूर रहते हैं। उनकी काया सदा-निरोगी थी। धार्मिक क्षेत्र में भी देवता उच्च माने जाते हैं। उनको यह सब प्राप्तियां अविनाशी ज्ञान-धन से ही हुई थीं। विनाशी धन से ये प्राप्तियां नहीं हो सकतीं। परंतु आज मनुष्य इस अविनाशी कमाई की ओर ध्यान नहीं देता। यह उसके दुर्भाग्य हैं।

जीवन की थकान को दूर करने की आध्यात्मिक विधि

ले.-ब्रह्माकुमार रमेश शाह, बम्बई

एक शारीरिक जन्म से लेकर शारीरिक मृत्यु तक का समय, जिसमें आत्मा शरीर में रहकर अपना कर्त्तव्य करती है, एक '**जीवन**' कहलाता है। इस प्रकार जीवन शारीरिक जन्म और मृत्यु द्वारा सीमाबद्ध है। इस प्रकार के जीवन के बाद आत्मा एक और जीवन बिताती है क्योंकि एक मृत्यु के बाद दूसरा जन्म उसके लिए तैयार रहता है। इस प्रकार जन्म-मरण और पुनर्जन्म का चक्कर चलता रहता है। जन्म-मरण के एक पूरे चक्कर को एक '**आत्मिक जीवन**' कह सकते हैं।

'**शारीरिक जीवन**' और '**आत्मिक जीवन**' के अंतर को जानना बहुत आवश्यक है। शारीरिक जीवन में तो आत्मा जन्म से लेकर मृत्यु तक एक ही शरीर में रहती है परंतु '**आत्मिक जीवन**' मनुष्य-सृष्टि के एक कल्प से शुरू होता है और उसी कल्प के अंत तक अर्थात् ५००० वर्ष तक चलता है।

आत्मिक जीवन में आत्मा अधिक-से-अधिक कुल ८४ जन्म लेती है, या यों कहें कि वह ८४ शारीरिक जीवन धारण करती है। मनुष्य का प्रत्येक शारीरिक जीवन उसके अगले और पिछले शारीरिक जीवन से संबंधित है और, इसीलिए, हम भूत, वर्तमान और भविष्य काल को एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकते क्योंकि आज का वर्तमान काल कल के लिए भूतकाल बनेगा और आज का भूतकाल कल वर्तमान काल था। इसलिए जब हम आत्मा की थकान के लिए सोचेंगे तब हमें भूत, वर्तमान और भविष्य को अलग-अलग विचार न करके समन्वयात्मक दृष्टिकोण से देखना होगा।

शारीरिक और आत्मिक थकान

जीवन में आने से आत्मा को थकान लगती है। इस थकान के बहुत-से कारण हैं। सामान्य परिश्रम और पुरुषार्थ करने से शरीर थकता है परंतु शरीर को आराम देने से वह थकान कम हो जाती है। आत्मा की थकान और उसको दूर करने के उपाय, शरीर की थकान और उसको दूर करने के तरीकों से बहुत भिन्न हैं। सतत कर्मों को करने के कारण आत्माओं को भी थकान लगती है। सुख जब सहज ही मिल जाता है तो थकान नहीं होती। परंतु दुःख प्रत्याघाती (re-active) होने के कारण सदैव दुःख सहन करने वालों को थका देता है। सुख में किसी को थकान नहीं होती परंतु सुख प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करना पड़ता है। सुख प्राप्ति का पुरुषार्थ भी जीवात्मा को थका देता है अर्थात् दुःख को सहन करने से और सुख प्राप्ति के पुरुषार्थ से आत्मा को थकान का अनुभव हो सकता है।

कई लोग समझते हैं कि आत्मा सुख और दुःख के लेप-क्षेप से न्यारी है। परंतु उनको यह मालूम नहीं है कि सुख-दुःख का लेप-क्षेप संस्कारजन्य होने से और आत्मा में संस्कार गुप्त रीति से होने के कारण आत्मा को सुख-दुःख का लेप-क्षेप अवश्य ही लगता है अर्थात्, आत्मा निर्लेप्य नहीं है। जिस प्रकार बीज में वृक्ष के संस्कार सूक्ष्म रूप में स्थित हैं और वे बाद में वृक्ष के रूप में दिखाई पड़ते हैं, उसी प्रकार, यह गुप्त संस्कार भी जब-जब कर्म बनते हैं तो सुख-दुःख उत्पन्न करते हैं अर्थात् थकान देते हैं।

आत्मा संस्कारों के अनुसार कर्म करती है और संस्कारजन्य सुख-दुःख होने के कारण सुख की प्राप्ति का पुरुषार्थ और दुःख का सहन करने के पुरुषार्थ से आत्मा को थकान लगती है। तो यह प्रश्न उठता है कि कितना समय आत्मा को दुःख सहन करना पड़ता है और कितना समय सुख के लिए पुरुषार्थ करने से आत्मा को थकान लगती है? अर्थात् कितने समय के विकर्मों के बोझ से और कितने समय के प्रारब्ध के पुरुषार्थ के प्रयत्न से आत्मा को थकान लगती है? इस प्रश्न का उत्तर समझने से पहले यह भी समझना आवश्यक है कि कितने जन्म सुख के और कितने जन्म दुःख के आत्मा एक आत्मिक जीवन के अंदर भोगती है।

सुख और दुःख के जन्मों की गणना—

आत्मा इस साकार सृष्टि पर अधिक-से-अधिक ८४ जन्म भोगती है। उसमें से २१ जन्म (२५०० वर्ष) सतयुग और त्रेतायुग में होते हैं जबकि सृष्टि पहले-पहल स्वर्ग होती है, प्रकृति सतोप्रधान होती है और आत्माएं सर्वगुण सम्पन्न, सम्पूर्ण निर्विकारी और पवित्र होती हैं। इस प्रकार के सुख की सामग्री के समय में आत्मा २१ जन्म सुख भोगती है। शेष ६३ जन्म (अर्थात् २५०० वर्ष) द्वापर और कलियुग में दुःख के बीतते हैं जबकि प्रत्येक मनुष्यात्मा माया अर्थात् काम, क्रोधादि पाँच विकारों के वशीभूत होने लगती है और इसके परिणामस्वरूप प्रकृति भी दुःखदायी बन जाती है। समय के

साथ विकर्मों का बोझ बढ़ता जाता है क्योंकि माया का प्रभाव भी दिनोंदिन बढ़ता जाता है।

एक आत्मिक जीवन के अंत और दूसरे आत्मिक जीवन के आदि के समय को संगम युग का जीवन कहा जाता है जिसमें ही पुरानी सृष्टि का विनाश और नई सृष्टि की स्थापना का कर्त्तव्य परमपिता परमात्मा 'शिव' करते हैं। इस संगम युग के शारीरिक जीवन में आत्मा को भूतकाल के ६३ जन्मों में किये-गये विकर्मों के बोझ को समाप्त करना पड़ता है और साथ-साथ परमात्मा द्वारा भविष्य के आत्मिक जीवन के २१ शारीरिक जन्मों की सुख की प्रारब्ध पाने के लिए पुरुषार्थ भी करना पड़ता है जिस कारण ही कई आत्माओं को थकान लगती है। दूसरे शब्दों में संगम युग में आत्मा को भूतकाल के विकर्मों का हिसाब-किताब चुक्तु करने, वर्तमान काल के कर्म को अकर्म या श्रेष्ठ कर्म बनाने और भविष्य काल के लिए श्रेष्ठ प्रारब्ध बनाने के लिए श्रेष्ठ कर्म करने पड़ते हैं।

ऊपर जिस संगमयुग का वर्णन किया गया है उसके सुहावने समय में सर्वशक्तिमान, त्रिकालदर्शी, परमपिता परमात्मा त्रिमूर्ति शिव इस सृष्टि पर दिव्य जन्म लेकर अर्थात् प्रजापिता ब्रह्मा के तन में दिव्य प्रवेश करके उनके द्वारा सहज राजयोग और सहज ज्ञान सिखाकर और इन दोनों की धारणा जीवन के अंदर करा कर यह सब थकान दूर करते हैं। परमात्मा द्वारा जो राजयोग की शिक्षा मिलती है उससे विकर्म विनाश होते हैं और ज्ञान के द्वारा भविष्य के लिए प्रारब्ध बनती है और इस सहज ज्ञान और सहज राजयोग की धारणा के कारण वर्तमान काल के कर्मों को आत्मा श्रेष्ठ कर्म बनाती है। यही कारण है कि जब जीवन में ज्ञान और योग की धारणा हो जाती है तो पुरुषार्थ की थकान आत्मा को नहीं लगती बल्कि परमात्मा के साथ सह-अस्तित्व और निकटतम मिलन के आनन्ददायक अनुभव के कारण आत्मा में प्रफुल्लता आती है और इसलिए वह अपने इस संगमयुग के जीवन को धन्य और परिपूर्ण भी समझती है। परमात्मा के मधुर मिलन से आत्मा अलौकिक और अतीन्द्रिय सुख भी महसूस करती है। इस तरह जीवन की थकान इस दिव्य सुख और अलौकिक मस्ती में बदल जाती है।

यह आनन्द सामान्य साक्षात्कार के आनन्द से भी श्रेष्ठ है, कारण कि परमात्मा के साथ बुद्धियुक्त सहचर्य और अर्थयुक्त आचरण होने के कारण किसी भी मंद साधक को भी आध्यात्मिक आनन्द होता है। अगर आत्मा इस आनन्द को अबाध्य रूप से लूटे तो उसके विकर्म विनाश हों और नई प्रारब्ध भी बने। सिर्फ इस संगमयुग में ही परमात्मा के साथ आत्मा का इस कर्मभूमि पर मिलना होता है। इसलिए इस संगमयुग की महिमा मुक्तकण्ठ से गाई गई है। साथ ही जीवन की थकान को अतीन्द्रिय सुख में परिवर्तन करने वाले परमपिता परमात्मा शिव की सर्वशक्तिमान, भोलानाथ, अमरनाथ, सोमनाथ, विश्वेश्वरनाथ, महाकालेश्वर नाम से महिमा है। सुखदाता और दुःखहर्ता के रूप में उनका वर्णन इसीलिए है।

हम सब आत्माओं का वर्तमान संगमयुग में भविष्य के आत्मिक जीवन के लिए श्रेष्ठ प्रारब्ध बनाने का स्वर्णावसर है। अब परमात्मा अपना साथ देकर नई सृष्टि की रचना कर रहे हैं तो चलो हम सब नये आत्मिक जीवन को श्रेष्ठ कर्मों से परिपूर्ण, संपूर्ण निर्विकार बनाने का पुरुषार्थ करें! □

भुवनेश्वर: *शिक्षाविद् स्नेह-मिलन के अवसर पर ब्र.कु. संदेशी प्रो. दीना बंधु मिश्रा तथा भ्राता रजत कु-कन डायरेक्टर स्कूलज़ को ईश्वरीय साहित्य भेंट करते हुए।*

विकार और दुःख

ले. ब्रह्माकुमारी चन्द्रा, मॉरीशियस

जब कोई वस्तु धर्म अथवा गुण परिवर्तित कर लेती है तो उसे 'विकृत' कहते हैं। अतः विकार धर्म-परिवर्तन और स्वरूप-परिवर्तन अथवा गुण-परिवर्तन का नाम है। आत्मा को 'विकारी' तब कहा जाता है जब आत्मा स्वरूप-निश्चय को और शान्ति रूपी धर्म को त्याग कर और सम्पूर्ण अहिंसा, संतोष, धैर्य इत्यादि दिव्य गुणों को छोड़कर देह-निश्चय, अशान्त और आसुरी लक्षणों वाली हो जाती है।

अब जैसे शीतल जल अग्नि से मिलकर अपनी शीतलता रूपी धर्म को त्याग विधर्मी अर्थात् गर्म हो जाता है, ठीक उसी प्रकार शान्ति-स्वरूप आत्मा भी जड़ प्रकृति का संग करती-करती अपने आत्मनिश्चय को और अपनी शान्ति को खोकर विकारी अर्थात् विधर्मी और विपरीत गुणों वाली हो जाती है।

यह एक नियम है कि स्वधर्म ही सबको प्रिय लगता है, क्योंकि स्वधर्म में टिकने से ही सुख की प्राप्ति होती है। स्वधर्म कहते ही उन लक्षणों को हैं जिनमें स्थित होने से सच्चे सुख-शान्ति की प्राप्ति होती है। अतः स्वभाव से ही सब मनुष्यात्माएँ सुख और शान्ति प्राप्त करना चाहती हैं अर्थात् स्वधर्म में टिकना चाहती हैं। परंतु यह ज्ञान न होने के कारण कि स्वधर्म में पुनः स्थित कैसे हुआ जा सकता है अर्थात् विकारों को तथा विकर्मों को कैसे समाप्त किया जा सकता है, वे अपनी इस शुभ इच्छा (सुख और शान्ति की कामना) को पूर्ण नहीं कर पातीं।

जब मनुष्य को विषय और व्यक्ति आकर्षित करते हैं तभी वह विकृत होता है। विषय और व्यक्तियों में ले जाने वाला, मन के विकल्प के सिवा और कोई नहीं। अतः जब तक मन को व्यक्तियों और विषयों के आकर्षण के प्रभाव से निकाला न जाए तब तक मनुष्य निर्विकारी अथवा 'स्वधर्म-में-स्थित' नहीं हो सकता।

मन का विषय और व्यक्तियों से निरोध कर सकने वाली अथवा अनासक्त करने वाली तो बुद्धि ही है। बुद्धि ही इस बात का निर्णय करती है कि अमुक कार्य करने योग्य है या नहीं। परन्तु यदि मनुष्य की बुद्धि अथवा निर्णयशक्ति के मुकाबले में मनुष्य के विकल्प और उसकी वासनाएं अथवा उसके अशुद्ध संस्कार अधिक दृढ़ हों तो बुद्धि मन से हार मान लेती है और मन स्वयं तो विषय व्यक्तियों का चिन्तन करता ही है, परन्तु वह बुद्धि को पूर्ण रीति से परास्त करके इन्द्रियों को भी वासना-भोग में लगा देता है। यदि मन इस प्रकार से विकृत होता रहे तो वह बुद्धि को भी विकृत (विकारी) कर देता है और बुद्धि के नाश होने से अर्थात् कर्त्तव्य अकर्त्तव्य की पहचान न रहने से मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है, क्योंकि भ्रष्ट बुद्धि वाला मनुष्य विकर्म करता है, विकर्मों से दुःख होता है और दुःखी मनुष्य का जीवन मृत्यु-तुल्य ही है।

अब जन्म-जन्मान्तर के परिपक्व हुए अशुद्ध संस्कारों को अपने ही बुद्धि-बल से जीत सकना मनुष्य के लिये बिलकुल असम्भव है। जब मनुष्य कर्मेन्द्रियों को जीतने का पुरुषार्थ करता है तो पूर्व काल के संस्कारों के कारण या तो कर्मेन्द्रियाँ मन को फिर विषय-व्यक्तियों में धकेलकर ले जाती हैं और या विकारी मन स्वयं ही बुद्धि से युद्ध शुरू कर देता है और बुरा सोचने तथा बुरी वृत्ति की टेव नहीं छोड़ पाता बल्कि इस कोशिश में रहता है कि बुद्धि को भी अपना साथी बना ले ताकि उसके (मन के) ऊपर कोई रोक-टोक न रहे। ऐसी दशा में माया रूपी ग्रह से आत्मा रूपी गज को छुड़ाने वाला केवल परमात्मा ही है क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है। अगर यह गज उस समय परमात्मा को याद न करे और भगवान् उसकी सहायता को न आयें तो उसका और कोई भी रक्षक नहीं होता। इससे सिद्ध है कि विकारों को जीतना चाहते हुए भी मनुष्य तब तक इन्हें नहीं जीत सकता जब तक कि उसकी बुद्धि का योग परमात्मा के साथ न हो। हम लौकिक कार्य में भी यह युक्ति प्रयोग में लाते हैं। जहाँ कोई कार्य हम अपनी शक्ति अथवा योग्यता द्वारा नहीं कर सकते तो किसी दूसरे से सहायता ले लेते हैं। इसी प्रकार जब कि यह निश्चित है कि हमारी बुद्धि पूर्ण रीति से केवल अपनी ही योग्यता अथवा बल से मनोविकारों, विकल्पों और विकर्मों को समाप्त नहीं कर सकती, तो बुद्धि को बलवान् साथी दिलवाने के लिए, बुद्धि का संग परमात्मा के साथ जोड़ना आवश्यक है, क्योंकि एक वही तो स्वयं सम्पूर्ण निर्विकारी, सर्वगुण सम्पन्न, सर्वशक्तिमान् और सबका शुभचिंतक है।

परन्तु जो लोग आत्मा को ही परमात्मा मानते हैं और स्वयं को शिव निश्चय करते हैं अर्थात् जो स्वयं को असमर्थ न समझ परमात्मा के साथ योग ही नहीं लगाते, उन्हें सर्वशक्तिमान् परमात्मा की रक्षा शक्ति और सहायता नहीं मिलती। जबकि परमात्मा ही उनके साथ नहीं तो वे विकारों को जीत नहीं सकते और जबकि वे विकारों को जीत ही नहीं सकते तो वे अन्य मनुष्यों के मुक्तिदाता और जीवन्मुक्तिदाता

(शेष १९ पृष्ठ पर)

चोरी-छिपी

ले.-ब्रह्माकुमारी शीला, गोहाटी

तन, मन अथवा धन से की हुई किसी भी भूल को छिपाना अथवा छिपाने की कोशिश करना **चोरी** है। चोरी केवल धन की नहीं होती बल्कि तन और मन द्वारा किये गये अकर्त्तव्यों की भी हो सकती है। मनुष्य मनुष्य से भी अपना अकर्त्तव्य तभी छिपाता है जब वह यह समझता है कि किसी को बताने से मेरे मान में हानि होगी अथवा मुझे दण्ड मिलेगा। परंतु मनुष्यों से लज्जा करने वाला चोर-मनुष्य यह नहीं समझता कि वह परमात्मा की नजरों में तो गिर ही चुका है अर्थात् पतित ठहराया गया है और धर्मराज से तो वह दण्डित होगा ही। अतः यह याद रखना चाहिये कि मनुष्यों से छिपाने के बावजूद भी विकर्मों की सजा तो मिलती ही है क्योंकि जहां किसी की भी आँख न देखती हो वहां धर्मराज की आंखें तो देखती ही हैं। धर्मराज, चोर को दिखाई नहीं देता (इसीलिये, धर्मराज को 'चित्रगुप्त' अर्थात् गुप्त चित्र वाला भी कहा जाता है) परंतु धर्मराज तो चोर की चोरी को जानता ही है। इसलिए चोरी की आदत (टेव) वाले मनुष्य को चाहिये कि जब कभी भी अकर्त्तव्य करने का संकल्प उठे वह यह चिंतन करे कि—'हाय मेरा अशुद्ध संकल्प तो धर्मराज के पास तत्क्षण पहुंच चुका परंतु अब भी यदि मैं उसे वाचा और कर्मणा में नहीं लाऊंगा और भगवान् से छिपाने की कोशिश नहीं करूंगा तो मुझ पर उसकी दया-दृष्टि और क्षमा-वृष्टि हो जायेगी।"

यदि किसी मनुष्य को कोई फोड़ा अथवा घाव हो और वह उसे छिपाता रहे तो एक दिन वह घाव नासूर बन जाता है। उसमें से गंद निकलता ही रहता है, पीप बहती ही रहती है। वह घाव भरता नहीं है बल्कि वह एक दिन मनुष्य के सर्वनाश का कारण बन जाता है। अगर कोई रोगी अपने रोग को प्रकट नहीं करता तो उसका रोग पुराने (Chronic) एवं असाध्य (incurable) रोग का रूप धारण कर लेता है। फिर वह रोग एक दिन मनुष्य की जान लेकर ही जाता है। ऐसा ही परिणाम मन-वचन-कर्म की बीमारी अथवा अकर्त्तव्य या अपवित्रता को छिपाने से हुआ करता है। बीमारी को छिपाना अच्छा नहीं, बुरा है। गुप्त रोग को बताने से मान की जो हानि होती है वह इतनी घातक नहीं होती जितनी न बताने के कारण बाद में वह हानिकारक सिद्ध होती है। जब उस रोग से सर्वनाश होने की स्थिति आ पहुंचेगी और बीमारी प्रकट हो जायेगी तो सब कहेंगे कि इसमें इतना रोग था परंतु इसने बताया ही नहीं! इसलिए आध्यात्मिक गुरु नाम का जो वैद्य परमात्मा शिव अथवा निमित्त शिक्षक हैं उनको अपनी अवस्था की नाड़ी दिखाकर, विकारों का टैम्प्रेचर (तापमान) जांच कराकर अथवा अकर्त्तव्यों के लक्षण (Symptoms) बता कर ज्ञान की औषधि ले लेनी चाहिये। वैद्य से बीमारी छिपाने वाला और दाई अथवा माँ से पेट (भूख) छिपाने वाला मनुष्य बिना-आई मौत मरता है। इसी प्रकार अपनी आध्यात्मिक भूलें छिपाने वाला व्यक्ति भी पथ-भ्रष्ट हो जाता है।

गंदगी को छिपाकर रखने से बदबू हो जाती है। अतः मन, वचन और कर्म के अकर्त्तव्यों को छिपाकर अपने अंदर ही अंदर मानसिक दुर्गंध फैलाना यह कोई बुद्धिमत्ता थोड़ी है। जब तुम्हारी यह स्थूल आँखें अपने घर की गंदगी को नहीं देख सकतीं और शरीर अथवा वस्त्रों के मैलेपन को अच्छा नहीं समझतीं तब भला तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तन, मन, धन के अकर्त्तव्यों को निकालने की बजाय छिपाने से भी दुर्गंध हो जाती है? गंदी जगह पर कोई भी मनुष्य बैठना नहीं चाहता है। चोरी भी एक गंदगी ही होती है जो और गंदगियों को भी इकट्ठा करती है। जिस दिन लोगों को यह मालूम हुआ कि तुम ऐसे चोर हो तो तुम्हारे पास कौन बैठना पसंद करेगा? **तुम्हारे हृदय में भगवान् का शुभ नाम कैसे निवास कर सकेगा? इसलिए तुम जो अकर्त्तव्य को छिपाने का पुरुषार्थ करते हो, उसकी बजाय ज्ञान के झाड़ू से मन को साफ कर उसे मंदिर बनाने का पुरुषार्थ करो तो सब देखेंगे कि तुम्हारे** मन-मंदिर में मिट्टी आ गई थी जो तुमने ज्ञान रूपी झाड़ू से निकाल दी। तब तुम्हारे दुर्गुण, तुम्हारे लिये अपमान का कारण नहीं बनेंगे, बल्कि उन दुर्गुणों को निकालने का पुरुषार्थ करता हुआ देख, तुम्हारे लिए वे मान का कारण बन जायेंगे।

शंका रूपी चिंगारी को छिपाने से ज्ञान-कोठरी में आग

अपने मन में शंका को छिपाना और संशय को दबाना भी एक बहुत बड़ी चोरी करने के तुल्य है। देखने में यह एक छोटी-सी चिंगारी है परंतु याद रखो, छिपाने से यह चिंगारी सारे ज्ञान रूपी घास को जलाकर राख की ढेरी कर डालती है। इसलिए अगर संशय की ज्वाला जल उठी हो तो ज्ञान के फायर ब्रिगेड (Fire Brigade) को बुला लेना चाहिए। जब किसी घर को आग लगती है तो उसको चोरी-चोरी छिपाया थोड़ी जाता है? किसी को यह बताना

कि मेरे घर को आग लगी है, मेरी सहायता करो, इसमें मान की कमी थोड़े ही होती है? अब जब कि तुमको कानून (दैवी मर्यादा) का पता लग चुका है और जबकि भगवान् ने अपना दिल तुम्हारे आगे खोल दिया है तो अगर तुम अपने दिल का हाल छिपाते रहोगे तो प्रीति की रीति कैसे निभेगी? तब तो सौदा नामंजूर (अस्वीकृत) हो जायेगा।

भूल को छिपाकर जब किसी के आगे तुम स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने की कोशिश करते हो तो यह तुम्हारी दूसरी चोरी है। इससे तुम्हारा कर्म-खाता धर्मराज के पास और अधिक ही खराब होता है। भूल करके स्वयं को निर्दोष सिद्ध करना तो गोया चोरी करके सीनाज़ोरी करना अथवा अपनी चतुराई दिखाना है। तुम चोरी करके सीनाज़ोरी करने को बुद्धिमत्ता समझते हो परंतु काल का विकराल रूप अपने भयानक मुख से विनाश के दांत निकाल कर तुम्हारी बेवकूफी पर हँसता है। लेकिन, अज्ञान की पट्टी बँधी हुई होने के कारण तुम्हारी आँखें न देख सकने को मजबूर हैं!

तुम समझते हो कि–"मैं अकर्त्तव्य को छिपा देता हूं और सजा से बच जाता हूं और अपमानित नहीं होता।" परंतु तुम देखते हो कि एक दिन चोर पकड़ा ही जाता है। कहावत है कि सौ दिन चोर के, एक दिन कोतवाल का होता है। अतः तुम्हें समझना चाहिए कि चोरी करके तुम उसके दण्ड से सदा के लिए बच नहीं रहते बल्कि तुम्हारी चोरी इकट्ठी हो रही होती है और एक दिन धर्मराज की आज्ञा से यम रूपी कोतवाल से तुम्हें सजा भी इकट्ठी ही मिल जायेगी। उसका दण्ड गुप्त है परंतु लगने पर कमर तोड़ देता है। तुम संसार में जितने दुःखी आदमी देखते हो, उनको दुःख का गुप्त डण्डा उनके कर्मभोग का ही तो लग रहा है। कर्म के फल के दण्ड से कौन बच सका है? लोग कहते हैं कि परमात्मा की हुकूमत में देर है पर अंधेर नहीं है परंतु हमारा अनुभव कहता है कि देर भी नहीं है और अंधेर भी नहीं है क्योंकि बुरा कर्म करने वाली आत्मा उसी समय मलीन, पतित और अशांत हो जाती है और पतित होना भी एक महान् दण्ड है।

कौन-सी चोरी करनी चाहिए?

यदि किसी को चोरी करने की आदत हो तो एक ऐसी भी चोरी है जिससे मनुष्य का कल्याण होता है। यदि कोई व्यक्ति चोरी करने की आदत से मजबूर है तो उसे ऐसी ही चोरी करनी चाहिए और छिपानी चाहिए। उस चोरी में अपमान से भी बचने का भय नहीं होता बल्कि मान से बचना होता है। वह चोरी है किसी के गुणों की। **किसी को मालूम भी न हो और तुम उसके गुण को चुरा लो यह कैसी अच्छी चोरी है! बहादुरी तो इसमें है कि तुम गुण-चोर हों और तुम्हें मान की इच्छा भी न रहे। तुम अपनी बुराई को नहीं बल्कि अपने शुभ पुरुषार्थ को छिपाओ।दूसरों की जो भलाई करते हो, उनकी जो सेवा करते हो और उनके लिए जो त्याग करते हो, उसको छिपाओ। इन बातों को गुप्त रखने से तुम्हारा लाभ है। चोरी वह करनी चाहिए जिससे कुछ कमाई हो। ऐसी चोरी तो केवल परमात्मा की गुप्त याद ही है। अतः तुम परमात्मा की गुप्त याद से परमात्मा का चित्त 'चुरा लो।' तुम 'छिपे हुए' ऐसे रुस्तम बन जाओ कि परमात्मा द्वारा ज्ञान गदा धारण करके और योग-शक्ति प्राप्त करके दिव्य गुणों की धारणा के दाव द्वारा अपने मन से विकार रूपी चोरों को भगा दो।**

विकारों को छिपाने से विकारों का पालन-पोषण होता है

छिपाना और लुकाना तो सदा कायरों का ही स्वभाव होता है, विकार जब मनुष्यात्माओं को घेरा डाल लेते हैं तभी मनुष्य छिपाने की कायरता करता है। **घर में चोर को छिपाना अच्छी बात नहीं है। जिसके घर में पांच चोर छिपे हों और वह इस बात को बताकर दूसरों से सहायता न ले तो वह एक दिन जरूर लुट जायेगा। इसीलिए, विकार-रूपी चोरों द्वारा चोरी करवाना मानो दिवाला निकलवाना है। विकारों की चोरी भी एक महान् विकार है जो कि बाकी विकारों को भी पालन-पोषण देता है। इसलिये और विकारों को निकालने के लिए पहले विकारों के इस सरदार (चोरी) को निकालना जरूरी है।** ■

(पृष्ठ १७ का शेष) विकार और दुख

अथवा 'गुरू' कहलाने के भी अधिकारी नहीं हो सकते।

अतः विकारों को जीतकर स्वधर्म में स्थित होने का, अथवा मुक्ति और जीवन्मुक्ति की प्राप्ति का एक मात्र उपाय यह है कि बुद्धि का योग परमात्मा से लगाया जाय और यह तभी हो सकता है जब परमपिता परमात्मा का परिचय हो। और, परमात्मा का सत्य परिचय और उसके साथ योग स्वयं परमात्मा ही (अर्थात् गीता के निराकार भगवान स्वयं ही) कराते है–यह स्पष्ट बात है। परन्तु परमात्मा योग तब सिखाते हैं और अपना परिचय (ज्ञान) भी तब देते हैं जब उनका अवतरण होता है। परमात्मा का अवतरण धर्मग्लानि ही के समय, कलियुग के अन्त और सतयुग के संगम-समय होता है। अतः जबकि परमपिता परमात्मा बुद्धि योग द्वारा ही निर्विकारी बनाते हैं और उनके द्वारा निर्विकारी बनने से ही मुक्ति और जीवनमुक्ति की प्राप्ति होती है तो मनुष्य को योगयुक्त और निर्विकारी बनना चाहिए क्योंकि सुख और शान्ति की प्राप्ति का दूसरा और कोई उपाय नहीं है। ●

निरोगी और निर्विघ्न जीवन का आधार– 'निस्संकल्पता'

ले.-ब्र.कु. गीता बिलासपुर

मनुष्य जो भी कर्म अथवा विकर्म करता है, उसे करने से पहले उसके मन में संकल्प उठता है। जैसे कर्मों का हिसाब-किताब बनता है और उसके अनुसार मनुष्य को सुख-दुःख भोगना पड़ता है, वैसे ही संकल्पों का भी लेखा बनता रहता है। अतः संकल्पों के कारण भी मनुष्य को सूक्ष्म भोगना-भोगनी पड़ती है। अतः विकर्मों से बचने के लिए संकल्पों के बारे में सचेत रहना आवश्यक है, अर्थात् निर्विकल्प बनना जरूरी है। जब आप निर्विकल्प अर्थात् अशुद्ध एवं फालतू संकल्पों से रहित बनेंगे तभी सुख-शांतिमय जीवन प्राप्त हो सकेगा। ऐसी निर्विकल्प अवस्था ही आत्म-शुद्धि की संपूर्ण अवस्था है।

देवताओं के वचन भी गिनती के और अर्थ-सहित होते हैं। उनका संकल्प उठता ही किसी कार्य के लिए है। इसी कारण, उनके जो संकल्प उठते हैं वह पूर्ण भी अवश्य होते हैं, मानो कि उनके संकल्पों में पूर्ण सिद्धि भी समाई हुई होती है। जो मनुष्य पवित्र और स्वरूप-निष्ठ होता है उसके सब कार्य निस्संकल्पता से अथवा संकल्प के सूक्ष्म बल से सहज ही हो जाते हैं। निस्संकल्प रहने से आत्मा की शक्ति व्यर्थ नहीं जाती, बल्कि मनुष्य परमात्मा की याद में रहकर एक अति प्रफुल्लित एवं शक्तिवान अवस्था में स्थित होता है। उस अवस्था में रहकर किए-गए संकल्प अथवा कार्य में बड़ी शक्ति समाई होती है।

निस्संकल्प अवस्था प्राप्त करने की युक्तियाँ

निस्संकल्प अवस्था वाला मनुष्य ही एकरस स्थिति में रह सकता है क्योंकि जिसको फालतू संकल्प आते हैं वह उन संकल्पों के कारण पूर्ण रीति हर्षितमुख, अडोल-चित्त और साक्षी एवं द्रष्टा बनकर नहीं रह सकता। वास्तव में व्यर्थ संकल्प आते ही उसको हैं जो (i) निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, हर्ष-शोक, जय-पराजय से थोड़ा-बहुत प्रभावित होता हो और (ii) एक परमात्मा ही के भरोसे पर तथा (iii) सृष्टि को एक बना-बनाया (pre-destined) नाटक समझकर अडोल निश्चय में खड़ा नहीं होता। यदि मनुष्य इस निश्चय में स्थित रहे कि (i) होनी तो हर हालत में होकर ही रहती है और बनी-बनाई ही बन रही है अथवा (ii) यह पार्ट तो हमने अनेक बार बजाया है, (iii) यह सृष्टि-नाटक तो बहुत ही युक्ति-युक्त और रहस्यपूर्ण है और (iv) प्रभु का आधार लेने वाली मुझ आत्मा का तो हर हालत में कल्याण ही कल्याण है, तो उस मनुष्य के मन में कोई विकल्प अथवा फालतू संकल्प उठ ही नहीं सकता। इसी निश्चय में स्थिति ही तो मनुष्य की ज्ञान की धारणा को साबित करती है। इसी उच्च धारणा के कारण ही तो ज्ञानी मनुष्य प्रभु को बहुत प्रिय होता है।

जिसने सर्वशक्तिवान परमात्मा का हाथ पकड़ा हो, जो उस प्रभु के मत पर चलता हो और उसी का हो गया हो, उसका अकल्याण हो ही कैसे सकता है–ऐसा निश्चय करके परिस्थितियों का बाहरी रूप न देखकर ज्ञानी मनुष्य फालतू संकल्पों और विकल्पों से बिल्कुल उपराम रहता है। वह जानता है कि सत्य की नाव डोलती जरूर है परंतु डूबती नहीं है। उसका यह निश्चय अडोल रहता है कि जब परमात्मा स्वयं ही खिवैया बना है तो इस संसार सागर के तूफानों से एक दिन पार अवश्य ही लगना है। इसलिए वह तूफानों को नहीं देखता बल्कि उसकी दृष्टि तो मंजिल पर ही टिकी रहती है। उसके मन में तो बस यही बसता है कि अभी मैं अपने निस्संकल्पता के देश में (मुक्तिधाम् में) अर्थात् अपने परमप्रिय प्रभु के धाम् में आरामी हुआ कि हुआ। मैं विघ्नों के इस संसार से निकलकर और काँटों की दुनिया को पार करके अभी फूलों की दुनिया में अर्थात् सुखधाम् में पहुंचा कि पहुंचा। जिस व्यक्ति को हर दम यही याद रहता हो उसको और कोई संकल्प अथवा विकल्प आ ही कैसे सकता है? उसे अगर और कोई संकल्प आ भी जाए तो टिक ही कैसे सकता है?

निस्संकल्प मनुष्य की आयु भी बढ़ती जाती है क्योंकि उसकी शक्ति व्यर्थ नहीं जाती। इसलिए, निस्संकल्प अवस्था वाले मनुष्य को इसी जीवन में निस्संकल्पता का सुख अर्थात् अतीन्द्रिय सुख तो प्राप्त होता ही है परंतु इसके अतिरिक्त उसे आने वाले जन्म-जन्मान्तर के लिए भी कमाई करने का बहुत समय मिल जाता है। अतः निस्संकल्प ही निरोगी, निर्विघ्न और निश्चिंत है। इसी जीवन में जो निस्संकल्प बन जाता है, भविष्य में भी जन्म-जन्मान्तर उसकी आयु बड़ी होती है, काया निरोगी होती है, जीवन निर्विघ्न होता है और सभी मनोकामनाएं स्वतः ही सफल होती हैं। अतः निस्संकल्पता के पुरुषार्थ में ही सारी प्राप्ति का राज (रहस्य) समाया हुआ है। ■

केवल आध्यात्मिक क्रान्ति से ही विश्व शान्ति

सभी वर्गों के लोग अपने मन में यह माने बैठे हैं कि संसार को सुख-शांति सम्पन्न बनाने के लिए एक बहुत बड़ी क्रांति (Revolution) की आवश्यकता है। राजनीतिक लोग समझते हैं कि किसान और मजदूर को उनकी मेहनत का पूरा मूल्य नहीं मिलता और पूंजीपति लोग उनके खून-पसीने की कमाई पर मौज उड़ाते हैं। अतः वे एक आर्थिक एवं राजनीतिक क्रांति लाना चाहते हैं जिससे पूंजीपति और मजदूर एक ही स्तर पर आ जायें और दोनों के बीच कोई फासला या अंतर न रहे। वे चाहते हैं कि समाज में वंश, धर्म या धन के दृष्टिकोण से कोई ऊंच-नीच या भेदभाव न रहे। इस प्रकार की विचारधारा को वे साम्यवाद (काम्मयुनिज्म) अथवा 'समाजवाद' (सोशलिज्म) का नाम देते हैं। समाजवाद को विश्वव्यापी बनाने के लिए चीन और रूस आदि देश और विश्व के अन्यान्य सभी देशों की साम्यवादी पार्टियां करोड़ों रुपए खर्च कर रही हैं, अनेक देशों में इस क्रांति के लिए सेना और शस्त्रों का भी बहुत बड़े पैमाने पर प्रयोग हुआ है तथा हो रहा है और परिणामस्वरूप खून की नदियां बहाई गई हैं।

सभी निष्पक्ष और समझदार लोग जानते हैं कि **इससे व्यक्ति या विश्व को शांति नहीं मिली** बल्कि विश्व दो दलों में बंट गया है और कभी क्यूबा, कभी लाओस, कभी वियतनाम और कभी अफ़गानिस्तान में इस कारण से भयानक युद्ध छिड़ जाता रहा है। इस क्रांति से हर देश में उथल-पुथल मच गई है, हर कारखाने में साम्यवादियों और पूंजीपतियों के बीच कशमकश चल रही है। परिणामस्वरूप, एक विप्लव और कोलाहल मच गया है, जहां-तहां करोड़ों रुपयों की संपत्ति और लाखों मनुष्यों के प्राण बंदूकों और बमों को बनाने या चलाने पर व्यर्थ खर्च हो रहे हैं जिससे प्रायः सभी देशों में कमी, मंहगाई और कष्ट का अनुभव हो रहा है और आज संसार एक विश्वयुद्ध की ओर बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। कौन है जो प्रमाणित कर सकता है कि इस प्रकार की आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक क्रांति से देश या व्यक्ति शांति के नजदीक पहुंच रहे हैं?

राजनीति में रुचि लेने वाले लोग पहले निरंकुश राजाओं को हटाकर उनकी जगह प्रजातंत्रीय शासन सत्ताएं स्थापन करने के विचार से भी एक विश्वव्यापी क्रांति लाने में लगे रहे हैं। उसका परिणाम भी दृष्टिगत हो चुका है। हर देश में हर चार-पांच वर्षों के बाद शासन-सत्ता हथियाने के लिए हलचल होती है, करोड़ों लोग मतदान देते हैं; उम्मीदवार और उनकी पार्टियां करोड़ों रुपये और करोड़ों घण्टे अपने-अपने मत के प्रोपोगण्डा अथवा मसविदे के प्रचार इत्यादि पर खर्च करती हैं; प्रजा की गाढ़े पसीने की कमाई पर लगे टैक्सों के पैसे से लोग एसेम्बलियों में और पार्लियामेंट में विभिन्न पक्ष लेकर चट्टानों की तरह टकराकर देशव्यापी शोरगुल पैदा करते हैं। **इस प्रकार कानून पास होते हैं; प्रस्ताव पास होते हैं, नारे लगाए जाते हैं; मीटिंगें, जलसे, पार्टियाँ प्रेस-कांफ्रेंसें (Press Conferences), प्रोटेस्ट (विरोध) इत्यादि होते हैं परंतु जनता फिर भी खचाखच भरे रेलवे के डिब्बों में भेड़ों की तरह सफर करती है, दूध फिर भी बोतलों में अथवा प्लास्टिक की थैलियों में मिलता है।** स्कूलों और कॉलिजों में प्रवेश प्राप्त करने की समस्या, मकान और रोजगार की समस्या, जान-माल की हिफाजत की समस्या, गुंडागर्दी से बचाव की समस्या, आतंकवाद की समस्या से लोगों को फिर भी चैन की साँस नहीं मिलती। इन राजनीतिक क्रांतियों से कहां और किसको शांति मिली है?

दूसरी ओर लोग एक औद्योगिक अथवा तकनीकी (Industrial or Technical) क्रांति लाना चाहते हैं। वे समझते हैं कि नये-नये कल-कारखानों को लगाकर और बाँध (Dams) बनाकर तथा बहुत मात्रा में विद्युतोत्पत्ति के लिए प्रबंध करके देश-प्रदेश में एक महान् क्रांति लाई जा सकती है। उनका विचार है कि इस क्रांति से मनुष्य के रहन-सहन और काम करने के तरीके बड़े सुविधाजनक हो सकते हैं, बटन दबाने से ही सब काम चालू हो सकता है, मतलब यह है कि उसे हर प्रकार की सुख-सामग्री सहज ही उपलब्ध हो सकती है और उसकी आय में भारी वृद्धि होने से उसकी आर्थिक दशा भी सुधर सकती है।

इस प्रकार की तकनीकी और औद्योगिक क्रांति के परिणाम भी किसी से छिपे नहीं हैं। निस्संदेह, साइंस से मनुष्य को बहुत सुविधाएं आदि प्राप्त हुई हैं परंतु सभी मानते हैं कि मशीन के संग में रहते-रहते मनुष्य भी एक मशीन ही हो गया है। उसने अपनी मानवता के कई अमूल्य गुण खो दिये हैं। वह प्रकृति (Nature) और परमात्मा दोनों से काफी दूर निकल गया है; उसमें प्रेम और सौहार्द पहले की तरह नहीं रहा। आज वह मनुष्य-जीवन को एक मूल्यवान वस्तु नहीं समझता बल्कि उसे भी एक मशीनरी समझकर उससे वैसा-वैसा व्यवहार करता है और उसका जीवन कृत्रिम और सभ्यता भी बनावटी हो गई है। परिणामस्वरूप, आज मनुष्य के मन में एक बहुत बड़ी खाई पैदा हो गई है। उसके मन में शांति नहीं बल्कि शांति के लिए केवल तड़प है। साइंस और तकनीक ने हर वस्तु को अपनी प्रयोगशाला

(शेष २२ पृष्ठ पर)

एकता

बी.के. कस्तूरी, मैसूर

यदि हम इस संसार रूपी उपवन को हरा-भरा एवं रामराज्य के रूप में देखना चाहते हैं या पतित संसार को पावन बनाना चाहते हैं, यदि हम भ्रष्टाचार को मिटाकर श्रेष्ठाचार के सुंदर भवन का निर्माण करना चाहते हैं तो आपस में एकता को अपनाना परम आवश्यक है। एकता शब्द छोटा है लेकिन सदा एक का बनाकर रखता है। इसके बारे में मुझे एक कहानी याद आती है...

एक बूढ़े किसान के चार लड़के थे। वे हमेशा आपस में झगड़ा करते थे। बूढ़े ने कई बार उपदेश दिया कि एक-दूसरे के साथ स्नेहपूर्वक रहें। लेकिन उसके सारे उपदेश बेकार हुए।

एक दिन किसान बीमार पड़ा। चारों लड़के उसकी चारपाई के पास खड़े रहे। तब पिता ने उनके हाथ में लकड़ियों का एक गट्ठा देकर आज्ञा दी कि उसे तोड़ो। हर एक लड़के ने उसे तोड़ने का प्रयत्न किया, पर वे तोड़ न सके। उसके बाद पिता ने हर एक को एक-एक लकड़ी देकर कहा कि अब इसे तोड़ो। वे बड़ी आसानी-से उसे तोड़ सके।

तब पिता ने उपदेश दिया, "हे मेरे पुत्रो! देखा, एकता की शक्ति! तुम सब मिल जुलकर रहोगे तो कोई भी तुमको कष्ट नहीं दे सकेगा। अगर तुम लोग मिल जुलकर नहीं रहोगे, तो एक लकड़ी की तरह तुम हार जाओगे।"

इसी प्रकार शिवपिता कहते हैं, "हे मेरे लाडले बच्चो, तुम देह नहीं हो, ज्योतिबिन्दू आत्मा हो।" इस नाते सभी का एक स्वरूप होने के कारण सब आत्माओं का धर्म भी एक है और सबका पिता एक परमात्मा है तथा सबका मूल घर भी एक है। इस प्रकार के विचार यदि सभी मनुष्यों के हो जायें तो उनके आचरण-विचरण में, आहार-व्यवहार में, रीति-रिवाजों में और मत-मान्यताओं में समानता अथवा एकता आ जायेगी। यदि विचारों में एकता आ जावे तो अन्य बातों में एकता आना मुश्किल नहीं है।

जहां एकता है वहां बल बहुत बढ़ जाता है। क्योंकि वहां कोई किसी पर कटाक्ष नहीं करता, वहां कोई किसी को पीछे नहीं धकेलता और वहां कोई किसी का वैरी भी नहीं होता। यदि किसी संगठन के सभी मनुष्यों के विचार भी समान हों तो उससे बड़ा बल अन्यत्र कहीं नहीं।

वैचारिक एकता ही विश्व एकता की पहली सीढ़ी है। भगवान् एक है (God is one) इस मान्यता को यदि व्यवहार में लावें और एक धर्म, एक ईश्वर में सभी अपना विश्वास व्यक्त करें तो यही एक धर्म और एक विश्वास कौमी एकता अथवा विश्व-एकता का सशक्त आधार बन सकता है। किंतु हम देखते हैं कि विश्व में हर संप्रदाय के अपने-अपने विश्वास, अपनी-अपनी मान्यताएं, अपने-अपने मत हैं। सभी की अपनी-अपनी ढपली है और सभी का अपना-अपना आलाप है। इस कारण आपस में टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है। यदि विश्व के सारे मनुष्य इस बात को बुद्धि में धारण कर लें कि हम सब आत्माएं हैं, हम सबका पिता परमात्मा है और हम सब आत्माएं परमधाम की रहने वाली है, हम सबका धर्म पवित्रता और शांति है तो निश्चित रूप से इस वैचारिक एकता के कारण लड़ाई-झगड़ा, टकराव, मनमुटाव, पथराव, घिराव आदि सब समाप्त हो जायेंगे। □

केवल आध्यात्मिक क्रान्ति से ही विश्व शान्ति

(पृष्ठ २१ का शेष)

(Laboratory) अथवा कारखाने में बना लिया है परंतु साइंसदान शांति को नहीं बना सके। वे भी आज सुख की नींद नहीं सो सकते बल्कि दवाइयाँ लेने से ही उनकी भी पल भर आँख लगती है।

इस प्रकार, हर वर्ग और हर विचारधारा के लोगों ने अपने-अपने तौर से क्रांति लाने की कोशिश की ताकि मनुष्य के जीवन में सुख और शांति आये परंतु वास्तव में मनुष्य सुख और शांति से दूर होता गया। अनेक प्रकार की क्रांतियाँ और नारों ने मनुष्य के जीवन को और भी अशांत बना दिया है और विश्व में संघर्ष को भी बढ़ा दिया है तथा भाई-भाई को और देश-देश को आपस में भिड़ा भी दिया है।

अतः जबकि सभी प्रकार की क्रांतियों के परिणाम स्पष्ट रूप से हमारे सामने हैं; हमें यह समझ लेना चाहिए कि इन क्रांतियों से शांति होने वाली नहीं है। **शांति होगी व्यक्ति के जीवन में आध्यात्मिक क्रांति लाने से। जब तक मनुष्य की आत्मा में पारस्परिक प्रेम, सहानुभूति, कल्याण भावना, करुणा, अहिंसा, ईश्वर-निष्ठता इत्यादि गुण स्थापित न होंगे तब तक शांति स्थापित नहीं हो सकती, नहीं हो सकती। जब तक मनुष्य को देवता बनाने के 'आध्यात्मिक कारखाने' देश में न लगेंगे तब तक अन्य किसी भी उपाय से कानून बनाये रखने की समस्या, मनुष्य द्वारा अन्य किसी मनुष्य के शोषण की समस्या अथवा अन्य किसी अशांति पैदा करने वाली स्थिति का सुधार अथवा हल नहीं होगा, नहीं होगा।** ■

सबको सहारा परमात्मा का

"बिनाश्रये न वर्तन्ते, कविता, वनिता,लता"

कवि प्रकृति के सहारे अपनी कवि प्रतिभा प्रकाशित करता है, वनिता अपने प्रियतम के सहारे स्वर्णिम स्वप्नों के संसार की रचना करती है, लता किसी वृक्ष के सहारे से फैलती, फूलती-फलती है।

निरंतर गतिशील कालचक्र में उत्थान-पतन, दुःख-सुख, हार-जीत, अनुकूल और प्रतिकूल अवस्थाएं क्रमशः चलती रहती हैं। सृष्टि रंगमंच पर सर्वश्रेष्ठ अभिनेता मानव विभिन्न अवस्थाओं के पड़ावों से गुजरता हुआ किसी-न-किसी सहारे से ही आज विज्ञान-युग का मार्गी बना है। केवल कविता, वनिता और लता ही नहीं, हर मानव को किसी-न-किसी के सहारे की आवश्यकता पड़ती ही है।

सभ्यता के प्रारंभिक काल से ही मानव किसी-न-किसी शक्ति के सहारे बढ़ता रहा है। छोटा-सा अंकुरित बीज पानी, हवा और प्रकाश का सहारा पाकर बड़ा पेड़ बनता है और असंख्य बीज उत्पन्न करता है। प्रकृति की गोद में जितने जीव और प्राणी हैं, वे सब किसी के सहारे बिना टिक नहीं सकते।

अंडे से पक्षी-शिशु निकलने से पूर्व उसे अपनी मां के ताप-सेक की जैसे जरूरत होती है, वैसे ही शिशु को पाल-पोसकर बड़ा होने तक मां के सहारे की नितांत आवश्यकता होती है। माँ के दूध और प्यार के अभाव में शिशु का जीवन कैसा रहेगा? बालक को शिक्षा-दीक्षा पाकर बड़े होकर प्रतिष्ठित सामाजिक मानव तक पहुंचने में अनेक सहारों से आना होता है। छोटा बालक चलना सीखने से पहले दीवार का सहारा लेता है। उसके बाल-साथी, उसके शिक्षक, अभिभावक सहारा बनते हैं। युवावस्था में नर-नारी को जीवनसाथी के सहारे की नितांत आवश्यकता महसूस होती है। बुढ़ापे में वह और कुछ नहीं तो लाठी का सहारा तो ढूंढ़ता ही है।

विशेषकर प्रतिकूल परिस्थितियों, जीवन की समस्याओं के समय इंसान अपने मित्रों, संबंधियों, शुभचिंतकों का सहारा ढूंढ़ता है। कहा भी गया है "डूबते को तिनके का सहारा।" कुसमय के वक्त किसी के मुख से सांत्वना का एक शब्द भी जीवन का सहारा बन जाता है। मुसीबत में ही इन अपनों की परीक्षा एवं पहचान हो पाती है।

लेकिन इस दुःखमय संसार में बहुधा इंसान को इन अपनों से धोखा,प्रवंचना और यंत्रणा ही मिलती है। मुसीबत में किसी का भी सहारा नहीं मिल पाता। तब उसे इस क्षणभंगुर संसार के अस्थिर, अस्थायी, मित्र-संबंधियों, वस्तु-वैभवों के पार उस अव्यक्त अविनाशी सर्व-संबंधों के स्रोत परमप्रिय परमात्मा की याद आती है और उसके मुख से निकल पड़ता है—"अब तो एक भगवान् का ही सहारा है।" जब चारों ओर से प्रताड़ित होने पर किसी पर उसका विश्वास नहीं रहता, तो वह कहता है, "भगवान् भरोसे।"

अनेक सांसारिक सहारों के होते हुए भी इंसान की आत्मा को प्रेम और आस्था की सूक्ष्म शक्ति का सहारा नितांत आवश्यक होता है। आस्था और विश्वास की इस शक्ति के स्रोत के प्रतीक रूप में मानव ने दुनिया भर में मंदिर, मस्जिद, गिर्जाघर और तीर्थ-स्थानों का निर्माण किया है। अनुकूल-प्रतिकूल स्थितियों में वह अपना दुःख-दर्द अपने इन्हीं इष्टदेवों को अर्पित कर आस्था का सूक्ष्म व अति शक्तिशाली सहारा पाता है।

हमारे इस सर्वोच्च हीरे तुल्य ईश्वरीय जीवन में हमें स्वयं परमात्मा का प्रत्यक्ष सहारा प्राप्त है। मात्र निमित्त हो आगे बढ़ते रहे हैं हम उस करनकरावनहार के सहारे। स्थापना के इन पचास वर्षों में प्रारंभ में साकार बाबा का प्रत्यक्ष सहारा मिला। ब्रह्मा बाबा और जगदंबा के प्रत्यक्ष छत्रछाया तले पले हुए बड़ी बहनें एवं भ्रातागण आज विशाल छाया वाले वटवृक्ष की तरह असंख्य आत्माओं का सहारा बने हैं। इनके दृढ़ सहारे को पाकर विकसित हो रहे दैवी वंशावली के नये अंकुर भी परम भाग्यशाली और कोटों में भी कोई ही हैं।

ईश्वरीय जीवन में भी अनेक परीक्षाओं का सामना करना पड़ता है। लहरों के बिना सागर, बिजली के बिना बादल, पेड़ के बिना पहाड़ जैसे नहीं शोभते,वैसे ही परीक्षाओं के बिना जीवन भी स्वादहीन लगता है। ईश्वरीय जीवन के आध्यात्मिक पढ़ाई के मार्ग में अनेक कठिन परीक्षाओं, परिस्थितियों से गुजरना होता है। माया अनेक रूपों में आकर परीक्षा लेती है। इसमें माया का मोहिनी रूप इतना आकर्षक होता है कि उसे ईश्वरीय विद्यार्थी पूर्ण निराकारी, निरहंकारी और निर्विकारी स्थिति में रहकर ही विकर्षित कर पाता है।

सभी देहधारी आत्माओं और सांसारिक वस्तुओं से मन को हटा देह सहित देह के सर्व-संबंधों को भूल उस एक निराकार, अव्यक्त, अखंड, सच्चिदानंदघन, ज्योतिर्बिन्दु, परमप्रिय परमात्मा में लवलीन हो जाने पर ही बीजरूप स्थिति में असीम सूक्ष्म चेतना शक्ति के सर्वशक्तिवान सहारे की प्राप्ति होती है। आत्मा शांति, आनंद की लहरों में लहराने लगती है। उसका बेसहारा मन पूर्ण शक्तिवान बन समग्र संसार के जड़ चेतन को परमात्मा की प्रेम, पवित्रता और आनंद की शक्तियों के विकेंद्रीकरण में मग्न हो सबको अनमोल सहारा देने में व्यस्त हो जाता है। ——— **ब्र.कु. विजय, भुवनेश्वर**

कर्मों की सम्पन्नता व पूर्णता का आधार 'मन की शुद्धता'

ब्रह्माकुमार 'प्रकाश' राजयोग भवन, भोपाल

मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है और मन का काम है सदा कुछ न कुछ सोचना और सोचने के ढंग व संकल्प के आधार से ही उसकी स्मृति, दृष्टि, वृत्ति व कर्मों पर प्रभाव पड़ता है। अतः परमात्मा-पिता आकर हमें संकल्पों को ही परिवर्तन करना सिखाते हैं और संकल्प परिवर्तन करने के आधार से ही नयी सृष्टि का, नये युग का प्रवर्तन होता है। इसलिए हम श्रेष्ठ ब्राह्मण-कुलभूषण आत्माएं यदि श्रेष्ठ कर्म करने के निमित्त बने हैं तो पहले हमें पूरी मेहनत स्वयं के संकल्पों को श्रेष्ठ व शुद्ध बनाने में करनी चाहिए।

संकल्पों की श्रेष्ठता के लिए निम्न बातें चाहिए:—

१. अमृतवेले बाबा से रूह-रूहान व शक्तिशाली स्वरूप का अनुभव करना:—स्वयं को मास्टर सर्वशक्तिवान, विश्वपरिवर्तक व अवतरित हुई विशेष आत्मा समझ बाबा को साथी समझ उनसे स्नेह व शक्ति लेकर अन्य आत्माओं को दान करो और श्रेष्ठ टाइटलों का सुमिरण करो।

२. मनसा की पवित्रता व शुद्धता:—आत्मा की शक्ति मन की सम्पूर्ण पवित्रता पर आधारित है। शिवबाबा सदा पवित्र है क्योंकि उनकी तीन विशेषताएं हैं—निराकारी, निर्विकारी, निर-अहंकारी। अतः हमें तीनों स्वरूप की स्मृति सदा रखनी है, अपने संकल्पों को सुबह से शाम तक की दिनचर्या में सूक्ष्म रीति चेक करो। मन कहां जाता है, मेरे संकल्प साधारण हैं, विकारी हैं, व्यर्थ हैं वा हीनत के हैं या शुभ और श्रेष्ठ संकल्प हैं क्योंकि अन्य सभी प्रकार के संकल्प मन को शक्तिशाली नहीं बनने देते।

६३ जन्म मनुष्य ने विकारी, व्यर्थ संकल्प करते अपनी शक्ति व धन गंवा दिया है और पतित बन गया है अतः चेक करो—

(i) अगर विकारी संकल्प आ रहे हैं तो उनसे युद्ध न करके अपने पवित्र आत्मिक स्वरूप व देवतायी स्वरूप की बार-बार स्मृति करो। विकारी संकल्पों को बिदा देते समझो मैं तो हूँ ही पवित्रता के सागर परमपिता परमात्मा की परमपवित्र संतान। इससे स्मृति श्रेष्ठ व पवित्र बन जाएगी।

(ii) हीनता का संकल्प आता है व देह की बीमारी में बार-बार ध्यान जाता है तो बार-बार स्वयं को शरीर से भिन्न और शरीर से न्यारी मास्टर सर्वशक्तिवान आत्मा समझने का पुरूषार्थ करो। स्वयं को बार-बार स्मृति दिलाओ—आत्मा अविनाशी है, उसे काल नहीं खा सकता। फिर जब भगवान हमारा साथी है तो हम क्या नहीं कर सकते और यह कार्य हमने कल्प पहले भी किये थे। सफलता तो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

(iii) देह के संबंधों में लगाव व किसी देह का आकर्षण:—यदि देह के संबंधों में बुद्धि बार-बार जाती है व देह का आकर्षण खींचता है तो सोचो बाबा से प्यारा, बाबा से मीठा व सुन्दर कौन हो सकता है? बाबा की महानता की तुलना करो तो देह के संबंधों के रस फीके लगेंगे। स्वयं को भी बार-बार याद दिलाओ कि बाबा के संकल्प क्या हैं और मैं क्या सोच रहा हूँ? क्या ये मेरे बाबा के संकल्प हो सकते हैं? क्योंकि जब सब कुछ बाबा का हो गया तो संकल्प मेरे कहां रहे।

(iv) ईर्ष्या-द्वेष के व परचिंतन के संकल्प:—अगर बाबा के गुणों को सदा सामने रख सेवा में या ज्ञान-मनन में स्वयं को व्यस्त रखें तो ऐसे निम्न संकल्पों के लिए बुद्धि में स्थान ही नहीं बचेगा। ऐसे संकल्प आते ही तब हैं जब बुद्धि खाली होती है तथा आत्मा अपने आप में अपूर्ण व अपरिपक्व होती है। हम अपनी ऊंची स्टेज में स्थित नहीं होते तभी नीचे की बातें बुद्धि में आती हैं। अतः स्वयं को गुणों की गहराई में जाकर भरपूर व न्यारा बनाओ तो ये व्यर्थ ख्यालात आ नहीं सकते। ऐसे संकल्पों को मोल्ड करने हेतु निर्माणचित्त बनो व सर्व को आत्मिक दृष्टिकोण से व ऊंची दृष्टि से देखो। समझों सब मेरे भाई हैं। सर्व के प्रति रहम व शुभभावना हो।

(iv) विशेष कार्य व लक्ष्य सदा सामने रखो:-विशेष कार्य का दृढ़ संकल्प लेने से व सेवा की विशेष योजना बनाने से जीवन में विशेषताएँ स्वतः आएंगी, आप विशेष आत्मा बन जाएंगे।

२. संकल्प कर्म का बीज है:—बीज जितना शक्तिशाली होगा कर्म भी उतना ही शक्तिशाली होगा। जैसे यदि बीज सड़ा हो स्थूल पौधे में भी बहुत सी बीमारियाँ लग जाती हैं और उसका फल भी पुष्ट व शक्तिशाली नहीं होता। उसी तरह कमजोर आत्मा अर्थात् कमजोर संकल्प वाली आत्मा को कार्य में कभी सफलता नहीं दिखायी देगी व यदि कार्य हो भी जाता है

तो भी उसमें पूर्णता नहीं होगी। क्योंकि वह कार्य को अधूरे मन से करेगी और कार्य सम्पन्न होने से पूर्व ही उसे उसके बिगड़ जाने का भय ही बना रहेगा और फिर संकल्पों में निर्बलता होने के कारण हम बाबा से शक्ति भी प्राप्त नहीं कर सकते और समय प्रति समय निमित्त आत्माओं द्वारा मिले ईशारे व चांस का पूरा-पूरा लाभ भी नहीं ले सकते।

४. **अगर बाबा का बनने के बाद** सेवा में मन नहीं लगता खुशी नहीं मिल रही है तो जरूर मानसिक अस्वस्थता है। और मन अस्वस्थ है तो तन भी अस्वस्थ बन ही जाएगा। फिर आलस्य, अलबेलापन आदि बीमारियां घेर लेंगी। स्थूल अस्वस्थता का कारण जैसे खान-पान की गड़बड़ी व परहेज की कमी होती है वैसे ही मानसिक अस्वस्थता तभी उत्पन्न होती है जब हम अपनी बुद्धि को वर्जित भोजन देते हैं अर्थात् जो बाबा की श्रीमत के खिलाफ हैं, उन बातों का चिंतन करते हैं। इसलिए बाबा कहते—मन, बुद्धि को बाबा की याद में लगाओ। इसमें अवगुण रूपी गंद का किचड़ा, व्यर्थ चिंतन का किचड़ा मत भरों।

५. **श्रीमत का उल्लंघन भी** मन्सा की अपवित्रता है मन के संकल्पों को शक्तिशाली बनाने के लिए सुबह से शाम तक शिवबाबा की ओर से भी श्रीमत मिलती है, उसका पूर्णरूपेण पालन जरूरी है। इससे हमारी बुद्धि को सम्बल मिलता है वह आत्मविश्वास पैदा होता है। परन्तु श्रीमत का उल्लंघन बोझ के रूप में व्यर्थ संकल्प बन स्वयं को ही खाता है। फिर ऐसी आत्मा का सेवा में मन नहीं लगता व बाबा से शक्ति का और परिवार से स्नेह का अनुभव भी नहीं होता है।

६. **संकल्पों की शक्ति का क्षय** कैसे होता है? हमारी आत्मिक शक्ति शुद्ध और शक्तिशाली संकल्पों से ही है और इनकी हमें बहुत संभाल करनी है क्योंकि बाबा भी कहते—तुम्हारा एक-एक संकल्प हीरे तुल्य है। इसलिए प्रायः अनुभव द्वारा देखने में आता है कि अधिक सोचने व अधिक सोचकर कम बोलने व करने वाली आत्मा कमजोर नजर आती है। इसलिए किसी भी बात पर हमें बहुत कम किन्तु गंभीर विचार करना चाहिए और हो सके तो बार-बार संकल्पों को ब्रेक लगाकर आत्मा की शक्ति को बढ़ाना चाहिए।

७. **संकल्प की चेकिंग कैसे करें?**:-बाबा ने हमें संकल्पों की चेकिंग करने के लिए ज्ञान का दर्पण दिया है, अतः हमेशा सोचो—क्या ये संकल्प ज्ञानयुक्त हैं, बाबा की श्रीमत अनुसार हैं? कई बार अपने मन की कल्पना या मान्यता को भी धोखे से हम शिवबाबा की प्रेरणा से उठा संकल्प मान लेते हैं जिससे हमारा नुकसान हो सकता है। अतः यदि बुद्धि में इसकी परखशक्ति नहीं है तो मन्सा का चार्ट निमित्त आत्माओं को देकर मन के संकल्पों को, चाहे वह सेवा प्रति ही क्यों न हो, पुष्टीकरण करा लेना चाहिए।

इस तरह जब हम बार-बार पहरेदार बन अपने संकल्पों की चैकिंग व परिवर्तन करते रहेंगे तो निश्चित ही हमारे जीवन में श्रेष्ठता आएगी। ●

बनने वाला देवस्थान

(१)

न कोई क्रोधी न कोई कामी,
न ही झूठ, न बदनामी,
सब पवित्र, न रहा अज्ञानी,
बनने वाला देवस्थान!

(२)

न कोई भरमे न भरमाना,
न कोई अन्धा न कोई काना,
देवस्थान की ऐसी शान,
बनने वाला देवस्थान!

(३)

न कोई चोरी न कोई चारी,
न विपदा न विपदा भारी,
न कोई टैक्स न चालान,
बनने वाला देवस्थान!

(४)

न कोई झगड़ा न कोई गाली,
न कोई राखा न रखवाली,
न शैतानी न शैतान,
बनने वाला देवस्थान!

(५)

सब ही गोरे न कोई काला,
न गायत्री न कर माला,
ऐसा सतयुग का इन्सान,
बनने वाला देवस्थान!

(६)

न अपराध न अपराधी,
न साधु न कोई समाधी,
शास्त्र भी न, न ही पुराण,
बनने वाला देवस्थान!

(७)

लाल जवाहर भरे हुए हैं,
सोने व मोती जड़े हुए हैं,
ईंट-पत्थर का नहीं मकान,
बनने वाला देवस्थान!

(८)

जाने की तैयारी कर लो,
पुण्य की गठरी सिर पर धर लो,
शिव बाबा देता है ज्ञान,
बनने वाला देवस्थान!

(९)

छोड़ 'काम' सब करो यह काम,
जो कुछ कहता है भगवान्,
शिव बाबा पर जाओ कुर्बान,
बनने वाला देवस्थान!

संस्कार एवं संस्कृति

ब्रह्माकुमार गोलक, माऊंट आबू

समय बदला, सभ्यतायें बदलीं, उसके साथ संस्कृति एवं मान्यतायें बदलीं। धरती पर चलने वाले इंसान सितारों की सैर करने लगे, सागर को अपनी शक्ति से मथने लगे। सागर, धरती, आसमान के बंधन को तोड़ निर्बन्धन होकर विहार करने लगे। क्या नहीं किया इंसान ने आज, अपने बुद्धि बल से? हां, वास्तव में किया तो सब-कुछ। असम्भव को सम्भव बनाया है। अतीत की प्रचलित अनेक पौराणिक मान्यताओं को झूठा करार कर अनेक प्रकार के बंधन तोड़ अपने को स्वाधीन कर दिया है, परन्तु फिर भी निर्बन्धन नहीं हो पाया है। भौतिकता में जितनी-जितनी प्रगति की उतना ही आध्यात्मिकता में गिरता गया। प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए जब-जब प्रयास किया तब-तब प्राकृतिक आपदाओं ने उसके सर्व वैज्ञानिक तन्त्रों की कमर तोड़ डाली है। क्योंकि वह अपने भौतिक प्रगति के साथ आध्यात्मिकता का समन्वय एवं सन्तुलन बनाये रखने में कामयाब नहीं हो सका। फलस्वरूप सर्व प्रकार के भौतिक साधन होने पर भी अनेक प्रकार के मानसिक, व्यावहारिक, सामाजिक सर्वोपरि नैतिक समस्याओं से प्रताड़ित होता रहा। उसके सुख के सर्व प्रयास उसके मौत के कफन बन गये हैं। भय, निराशा एवं तनाव ने इंसान को न केवल व्यक्तिगत रूप से जकड़ लिया, परन्तु उसके सभ्यता , संस्कृति को भी अपने वश में कर लिया है। सुख, शान्ति, आनंद सम्पन्न समाज गठन करने के उसका अथक प्रयास ने आज समाज को दुख, अशान्ति, कलह-क्लेश आदि अनेकानेक नैतिक उलझनों में डालकर उसकी आदि अनादि संस्कृति को काले नकाब से ढक दिया है। क्योंकि व्यक्ति एवं समाज दोनों एक-दूसरे से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सम्बंधित हैं। व्यक्ति ही समाज का आधार है। व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन में आने वाले हर परिवर्तन से समाज समानान्तर,प्रकारान्तर रूप से प्रभावित होता है। जिस प्रकार व्यक्ति के जीवन का मूल्यांकन, उसके नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास पर आधारित होता है। उसी प्रकार श्रेष्ठ समाज में आदर्श व्यक्तित्व एवं उच्च संस्कृति का अपना स्थान होता है। इसलिए व्यक्ति के लिए व्यक्तित्व एवं संस्कृति दोनों ही एक-दूसरे के परिपूरक हैं। क्योंकि व्यक्ति के व्यक्तित्व की प्रतिभा उसके आध्यात्मिक विकास अर्थात् श्रेष्ठ संस्कार की प्रतिबिम्ब है। फलस्वरूप समाज या सभ्यता की संस्कृति, सर्वोपरि व्यक्ति के संस्कारो से प्रभावित होती है। अतः किसी भी सभ्यता की संस्कृति का श्रेय उस समाज की आध्यात्मिक प्रगति व व्यक्तियों के संस्कारों पर आधारित होता है। यह व्यक्तिगत हो या सामूहिक।

कभी-कभी इतिहास के पृष्ठों में हमें यह देखने को मिलता है कि कई सभ्यताओं में एक ही व्यक्ति के संस्कारों ने समग्र सभ्यता की संस्कृति को बदल डाला है। भिन्न-भिन्न धर्मस्थापक अपने-अपने श्रेष्ठ संस्कारों द्वारा विश्व में अनेक सभ्यताओं को प्रभावित कर एक नई संस्कृति स्थापन करने में सफल हुए हैं। अगर हम भारत के अतीत की ओर नजर डालेंगे तो विदित होगा कि भारत में भी समयक्रम में अनेक विद्वान, महात्मा, दार्शनिक, धर्म-स्थापकों ने अपने-अपने श्रेष्ठ संस्कार एवं महान् आध्यात्मिक विचारधाराओं से समाज में प्रचलित संस्कृति को परिवर्तन करने के साथ समाज के सामाजिक जीवन को परिवर्तन कर सभ्यता के संस्कृति में आध्यात्मिकता, सत्य, अहिंसा, स्नेह, भ्रातृत्व भाव आदि श्रेष्ठ संस्कारों का सन्निवेश कर भारत की संस्कृति को विश्व में एक महान् आदर्श के रूप में उच्च एवं श्रेष्ठ स्थान दिलाया है। समग्र मानव सभ्यता को देखने से पहले यदि हम समाज या सभ्यता का मूल केन्द्र एक परिवार को उदाहरण के रूप में लें तो हमें यह निश्चय होगा कि किस प्रकार परिवार के हर सदस्य के आचरण, विचार धारा, आध्यात्मिक प्रभुत्व से अन्य सभी आत्माएं प्रभावित होती हैं। ऐसे ही बेहद परिवार की यह मानव सभ्यता हर आत्मा के संस्कारों द्वारा प्रकम्पित होती है जो कि समय के अन्तराल में संस्कृति बन जाती है। यह तो सब अनुभवी हैं कि प्रकृति में होने वाले परिवर्तन से इंसान का जीवन कितना प्रभावित होता है चाहे शारीरिक हो या मानसिक। इसलिये यह गायन है कि जैसा अन्न वैसा मन, जैसा पानी वैसी वाणी।

भौतिक शक्ति जो पराभौतिक शक्ति की साधन मात्र है अगर आत्मा पर अपनी छाप डाल सकती है तो आध्यात्मिक शक्ति से आये परिवर्तन व्यक्ति, समाज या सभ्यता की संस्कृति को क्या प्रभावित नहीं कर सकते? प्रभावित तो क्या समय पर सम्पूर्ण परिवर्तन कर देते हैं। हां, यह जरूर वह परिवर्तन अस्थाई व स्थाई, आंशिक या सम्पूर्ण हो सकता है जो कि उसकी सत्यता, महानता एवं कल्याणकारी भावना आदि अनुकूल आचरण पर आधारित है।

"संस्कार" विशेषतः यह देखा गया है कि व्यक्ति के

व्यक्तिगत संस्कार उसके आध्यात्मिक विकास पर आधारित होते हैं। फलस्वरूप सभ्यता की संस्कृति में आध्यात्मिक चेतना का प्रभुत्व प्रभावशाली होता है। क्योंकि संस्कार चेतना (आत्मा) की एक अभिन्न शक्ति है। मनुष्य की चेतना में मन, बुद्धि, संस्कार तीन मुख्य शक्तियां हैं जो समन्वय क्रम में कार्य करती हैं। इन शक्तियों के सहयोग से चेतना शरीर में अपने चेतनता के प्रभाव को रूपान्तर कर अपना कार्य सिद्ध करती है। इसलिए इन शक्तियों को समस्तीगत रूप में आत्मा कहा जाता है। इस शक्ति के कारण मनुष्य अन्य सभी प्राणी से महान् एवं उच्च माना गया है।

जिस प्रकार मन आत्मा में संकल्प या विचारधारा उत्पन्न कर चेतना के भाव को मुख द्वारा वर्णन करता है। बुद्धि अच्छा या बुरा का निर्णायक बन आत्मा को कार्य करने की दिशा प्रदान करती है, ऐसे मनुष्य आत्मा द्वारा किये हुये कर्म के फल के परिणाम का प्रभाव का अनुभव आत्मा की स्मृति में या मन में जो छाप डालता है, इसके आधार पर मनुष्य आत्मा उस प्रकार कर्म करने को स्वत: प्रेरित होती है। स्वयं द्वारा किये गये कर्म के प्रभाव अथवा स्वयं के कर्म के प्रभाव से प्रभावित हो आत्मा की जो वृत्ति बनती है या जो दृष्टिकोण बनता है, उसे संस्कार कहा जाता है। फलस्वरूप संस्कार, सीधे रूप से आत्मा की अन्य सहायक शक्तियों स्मृति, वृत्ति, जो मन में संकल्प या विचारधारा उत्पन्न करने में सहायक बनती है, को प्रभावित करते हैं, जिसके प्रभाव से आत्मा अपने मन में वे संकल्प उठाती है। उसे प्राप्त करने के लिये या कार्य में लाने के लिये इच्छा प्रकाश करती है। लेकिन यह इच्छा पूर्ति होने के पहिले या कार्य करने से पहले आत्मा की बुद्धि अपने ज्ञान व अनुभव के आधार पर उसकी सफलता या विफलता, लाभ या हानि का निर्णय देकर आत्मा को कार्य करने की सही दिशा प्रदान करती है। तत्पश्चात् आत्मा अपने कर्मेन्द्रियों को वह कार्य करने का आदेश देती है। जिस कार्य का परिणाम व प्रभाव पुन: आत्मा में रांस्कार के रूप में नूंध जाता है। यह परिवर्तन विधि या संस्कारों के कार्यचक्र को आत्मा के भाव स्वभाव तथा प्रभाव द्वारा जाना जा सकता है। क्योंकि भाव अर्थात् संस्कारों के प्रकम्पन्न से प्रकम्पित हो स्मृति एवं वृत्ति मन में जो संकल्प व इच्छा उत्पन्न कराती है, वह आत्मा के भाव उसके मुख आंखों एवं अन्य कर्मेन्द्रियों द्वारा जानी जा सकती है। परन्तु मन बुद्धि के सहयोग से स्वयं का व दूसरों का कल्याण, हानि-लाभ, मान-अपमान को ध्यान में रखते हुए समय, पात्र, परिस्थिति के अनुसार अपने भाव को परिवर्तन कर सकती है। स्वभाव अर्थात् आत्मा का निजी भाव—आत्मा को अपने कर्म एवं ज्ञान द्वारा प्राप्त किये हुये अनुभव से जो प्रेरणा मिलती है जिसके सहयोग से आत्मा कर्म करने को प्रोत्साहित होती है। बुद्धि में आध्यात्मिक ज्ञान का विकास एवं

प्रभाव—आत्मा अपनी कर्मेन्द्रियों से जो कर्म करती है, उसके परिणाम से वह स्वयं एवं अन्य आत्माएं उससे प्रभावित होती हैं, क्योंकि समाज में मनुष्य का कर्म सदा दूसरों के साथ एवं दूसरों के प्रति होता है। कर्म में निष्ठा, प्रेम, स्नेह, सहयोग, कल्याण, निष्काम सेवा, श्रेष्ठ भाव एवं स्वभाव को सम्मिलित कर आत्मा अपने संस्कारों के प्रभाव को प्रतिभाशाली बना सकती है। इस प्रकार आत्मा के संस्कार, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में, मन और बुद्धि को प्रभावित कर मनुष्य आत्मा के व्यवहार, कर्म एवं विचारधारा को परिवर्तन करके व्यक्ति के वर्तमान व्यक्तित्व को प्रभावशाली अथवा साधारण बनाते हैं जिस व्यक्तित्व द्वारा समाज की संस्कृति प्रभावित होती है। इसलिए समाज की संस्कृति एवं वर्तमान जीवन को प्रभावित करने के साथ आत्मा को पुनर्जन्म लेने के निमित्त अपना निजी संस्कार ही कारण बनता है।

"संस्कृति" यह तो हम बता चुके हैं कि जिस प्रकार संस्कारों से मनुष्य के कर्म, व्यवहार, विचारधारा, नैतिक मूल्य एवं सर्वोपरि उसकी जीवनधारा प्रभावित होती है, उसी प्रकार कोई भी समाज, सभ्यता व देश उसकी संस्कृति से प्रभावित होते हैं। किसी भी देश या सभ्यता की महानता उसकी संस्कृति होती है। क्योंकि संस्कृति से ही हमें उस समाज, सभ्यता या देश के लोगों की धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक जीवन पद्धति के साथ कर्म, व्यवहार, रीति-रिवाज, भाषा, शिक्षा, कला आदि जीवन के हर पहलू की जानकारी प्राप्त होती है। व्यक्ति से व्यक्तिगत चिन्ताधाराओं से लेकर सामूहिक भावनाओं का साक्षात्कार कराती है।

संस्कृति वा सभ्यता, देश का दिव्य गुण रूपी अलंकार या खजाना है। श्रेष्ठ संस्कृति ही एक श्रेष्ठ सभ्यता बनाने की आधार भूमि है। भारत की दैवी संस्कृति इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

समय प्रति समय विश्व में अनेक सभ्यताओं का उदय हुआ है। भारत के आदि दैवी संस्कृति से लेकर रोम, ग्रीक आदि की अनेकानेक सभ्यताएं जो भी हुई हैं उन सभी सभ्यताओं की संस्कृति में भारत की आदि सनातन दैवी संस्कृति श्रेष्ठ मानी गई है। हमारे पास उपलब्ध इतिहास से यह ज्ञात होता है कि हर सभ्यता की संस्कृति में भिन्नता होते हुए भी आदि संस्कृति के प्रभाव ने अन्य सभी संस्कृतियों को प्रभावित किया है।

भारत की प्राचीन आदि सनातन सभ्यता, सभी धर्मों के ग्रन्थों में तथा जन स्मृति के रूप में देखने व सुनने को मिलती है। जिस सभ्यता के व्यक्तियों के व्यक्तित्व को आजकल मन्दिरों में जड़ मूर्ति के रूप में पूजन कर उनके श्रेष्ठ संस्कार का गुणगान करते हैं, साथ-साथ मध्ययुग में उस समय की संस्कृति की स्मृति में बने अनेक प्रकार के कला स्थापत्य के लिये आज भी भारत विश्व-विख्यात है।

आध्यात्मिक शक्ति के संबंध से प्राप्त अनुभव के आधार पर तथा अपने किये हुए कर्म के विपरीत परिणामस्वरूप आत्मा अपने स्वभाव में परिवर्तन ला सकती है।

भारत के विभिन्न मन्दिरों में बने कला, शास्त्रों में वर्णित उच्चकोटि की आचार संहिता एवं अलंकारी दृष्टान्त, उस समय की सभ्यता की विकसित संस्कृति का स्मरण कराते हैं। साथ-साथ श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीलक्ष्मी, श्रीसीता जैसे दैवी मनुष्य आत्माओं के चरित्र उस समय के श्रेष्ठ व्यक्तित्व तथा समाज के संस्कारों की श्रेष्ठता का प्रमाण भी देते हैं। उस सुवर्ण संस्कृति की परिकल्पना न केवल भारत के धर्म-शास्त्रों में पढ़ने को मिलती है परन्तु क्रिश्चियन, मुसलमान सभी धर्मावलम्बी अपनी-अपनी मान्यताओं में इसे स्वर्ग, परिस्तान, दैवी संस्कृति के रूप में मानते आये हैं। साथ-साथ आज इसकी महिमा प्रचलित गाथाओं में सुनने को मिलती है।

कितनी अपार महिमा थी उस संस्कृति की, सर्वगुण सम्पन्न, १६ कला सम्पूर्ण, अहिंसा परमोधर्म देवी-देवता संस्कृति जहां एक धर्म, एक भाषा, एक राज्य था। क्योंकि धर्म एवं राज्य सत्ता एक के हाथ में थी। न केवल समाज के व्यक्ति परन्तु उस समय की प्रकृति एवं पशु-पक्षी भी सात्विक वृत्ति वाले सुखदाई थे। जिसके लिये गायन है कि शेर एवं गाय इकट्ठे रहते थे।

सुख, शान्ति, पवित्रता, प्रेम, आनन्द सम्पन्न मनुष्य का जीवन धन-धान्य सम्पन्न था। इसीलिये तो आज भी उसकी महिमा में कहते हैं कि वहां घी-दूध की नदियां बहती थीं। शारीरिक व मानसिक किसी भी प्रकार से मनुष्य दुखी नहीं थे।

ऐसी श्रेष्ठ संस्कृति वाली दैवी सभ्यता की महिमा जब हम कभी सुनते हैं तो वर्तमान सभ्यता के अधोपतन एवं जड़जड़ीभूत स्थिति का कारण स्वयं को पाते हैं। क्योंकि आज हमारे में वह श्रेष्ठ संस्कार वाले चरित्र, नैतिक मूल्य एवं आध्यात्मिक चेतना नहीं है। जिसके बल पर यह संस्कृति अपनी श्रेष्ठ स्मृति आजतक रखे हुए है। आध्यात्मिकता वा धर्म के नाम पर आज मनुष्य अपने नैतिक, सामाजिक मूल्य को बढ़ाने की बजाय अनेक प्रकार के अंधविश्वास, भेदभाव एवं भय पैदाकर भारत की प्राचीन संस्कृति के गौरव को पतन की ओर ले जा रहा है।

न केवल धार्मिक परन्तु आज का इंसान अपने स्वार्थ एवं भौतिक क्षणिक शारीरिक सुख-सुविधा के लिये अपने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं दार्शनिक प्रभुत्व को व्यवहार में लाकर पुरातन संस्कृति को मिटाता जा रहा है। ऐसी मार्मिक हालत में जब संस्कृति की रोती हुई आंखें अपने नकाब के अन्दर से सभ्यता की ओर देखती है तो उसे केवल अज्ञानता ही नजर आती है, जिस अज्ञानता में उसकी सभ्यता की कला काया चट हो गई है। कहां हैं दैवी संस्कार वाले राजकुमार एवं राजकुमारी और कहां हैं आज के देवताओं के पुजारी?

ऐसे सन्धि समय में जब सब निःसहाय हो जाते हैं तो सृष्टि के विधान के अनुसार फिर से उस दैवी संस्कृति का निर्माण करने के लिये भारत में आध्यात्मिक शक्ति का अभ्युत्थान होता है। स्वयं सृष्टि के रचयिता विधाता शिव परमात्मा अपनी रचना की पुनर्स्थापना हेतु स्वयं अपनी जन्मभूमि, कर्म भूमि भारत के गौरव की पुनर्स्थापना करने के लिये साकार प्रजापिता ब्रह्मा (आदिपिता) के तन का आधार लेते हैं।

निराकार परमपिता परमात्मा शिव, ब्रह्मा मुख द्वारा सर्व मनुष्य आत्माओं को सत्यनिष्ठ आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान कर मनुष्यात्मा की अज्ञानता को दूर करते हैं। जिस ज्ञान के प्रकाश से आत्मा अपनी बुद्धि को प्रकाशित कर अपने खोये हुये श्रेष्ठ संस्कार को अनुभव करने के साथ-साथ परमात्मा द्वारा स्थापित होने वाली वह दैवी संस्कृति को वर्से के रूप में प्राप्त करती है।

इसलिए आप सभी को यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि गीता के महावाक्यों अनुसार वर्तमान सृष्टि चक्र की इस संगम वेला में स्वयं परमपिता परमात्मा शिव अपने वायदे अनुसार आदि पिता प्रजापिता ब्रह्मा के तन में प्रविष्ट होकर हमें भारत के उस दैवी संस्कृति का आधार सच्चा आध्यात्मिक ज्ञान एवं प्राचीन राजयोग की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

आओ, हम सब मिलकर उस ज्ञान के मर्म को जानें एवं उसे अपने जीवन में धारण करें। साथ-साथ भारत के उस प्राचीन राजयोग की विधि द्वारा उस परमपिता से शक्ति प्राप्त कर अपने पुराने विकारी दुःखदायी संस्कारों को परिवर्तन करें और परमात्मा द्वारा चल रहे उस दैवी संस्कृति की पुनर्स्थापना के कार्य में अपना समय-शक्ति-मन-बुद्धि एवं संस्कारों का सहयोग प्रदान करें।

स्व-परिवर्तन से विश्व-परिवर्तन के नारे को सार्थक कर, स्व के संस्कारों को परिवर्तन कर, विश्व की संस्कृति को परिवर्तन करने का श्रेय प्राप्त कर, इस जन्म को सफल करने के साथ स्वयं को जन्म-जन्मान्तर के लिये दैवी गुण सम्पन्न बनायें। जिस सुन्दर सम्पन्न जीवन की अनुभूति की यादों में खोये हुए हम सभी उसे प्राप्त करने की आशा अब तक करते आये हैं। उसे अब इस धरती पर साकार करें।

देह-अभिमान

देह-अभिमान सभी अवगुणों की जड़ है।
देहि-अभिमान सभी गुणों का मूल है।

ईश्वरीय पढ़ाई बनाती है जीवन सुखदाई

ब्र.कु. आत्म प्रकाश, आबू पर्वत

जन्मजन्मांतर हम मनुष्यात्माओं से लौकिक पढ़ाई पढ़ते आये हैं, फिर भी चरित्र का पतन ही होता गया। विज्ञान के नये-नये आविष्कारों से भौतिकता में मानव का उत्थान हुआ लेकिन साथ-साथ ही मानवीय नैतिक मूल्यों का पतन होता गया तो चारित्रिक गरीबी मिटाकर हरेक को चरित्रवान बनाने के लिए स्वयं परमात्मा इस वसुंधरा पर अवतरित हुए। धन्य हैं वो महान् आत्माएं जिन्होंने गुप्त वेश में अवतरित हुए परमात्मा को पहचानकर ईश्वरीय पढ़ाई पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त किया। सचमुच ऐसे पद्मापद्म भाग्यशाली आत्माओं की महिमा अतुलनीय है।

केवल एक बार–

कहते हैं परमात्मा युगे-युगे अवतरित होते हैं। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि परमात्मा हर कल्प में कलियुग के अंत में और सतयुग के आदि के संगमयुग में केवल एक ही बार आते हैं और मनुष्यात्माओं को सत्य ज्ञान देकर सद्गति करते हैं। वैसे तो पूरे कल्प ही हम उनसे बिछड़े रहे। हम मनुष्यात्माओं के साथ अनेक जन्म रहकर अनेक प्रकार के ज्ञान सुनते आये हैं। तो मन से आवाज उठती है क्यों न हम इस अंतिम जन्म में सम्मुख भगवान् से सम्पूर्ण सत्य ज्ञान सुनें। क्यों न उस बुद्धि को जिसे हमने जन्म-जन्म भटकाया है, इस श्रेष्ठ ज्ञान के झूले में बिठा दें, क्यों न हम इस सत्य ज्ञान की गंगा बन जाएं।।

इस पढ़ाई की फीस है निश्चय बुद्धि बनना–

परमात्म-पढ़ाई की फीस है निश्चय बुद्धि बनना। परमात्मा यही चाहते हैं कि जो मैं पढ़ाई पढ़ाता हूं इसकी फीस मुझे यही चाहिए कि मेरा हर विद्यार्थी सम्पूर्ण निश्चय बुद्धि बने और इसी निश्चय की नींव पर अपने चरित्र की इमारत खड़ी करे। सम्पूर्ण निश्चय-बुद्धि अर्थात् स्वयं पर, परमात्मा बाप पर और ड्रामा के ज्ञान पर पूर्ण निश्चय हो।

प्रतिदिन पढ़ाई पढ़ना परमावश्यक–

ज्ञान सागर परमात्मा की हर लहर निराली होती है। न जाने कौनसी लहर से अमूल्य ज्ञान रत्न प्राप्त हो जाए इसलिए प्रतिदिन ज्ञान-सागर की लहरों में लहराने का आनंद लेना चाहिए। वैसे ज्ञान अर्जन करने को ज्ञान स्नान भी कहते हैं। तो जैसे प्रतिदिन स्नान करने से हम दिनभर तरो-ताजा रहते हैं, हालांकि पानी तो वही होता है। ऐसे ही सारे दिनभर अनेक आत्माओं के अशुद्ध संकल्प के प्रभाव से कभी-कभी उदासी तथा निराशा आती है, आत्मा पर माया के रोगों के कीटाणु भी बैठते हैं तो ज्ञान स्नान करने से नये उमंग उत्साह की लहर तथा ताजगी अनुभव होती है, इसलिये ज्ञान स्नान से कभी भी वंचित न रहें। सदा याद रखें–"**अगर न पढ़ेंगे पढ़ाई, तो माया करेगी चढ़ाई।**"

सिर्फ मुरली सुनना ही पर्याप्त नहीं–

ज्ञान-मुरली सुनने से हमें ज्ञान का भोजन मिलता है। उससे हमें बेहद खुशी प्राप्त होती है। लेकिन सुनने के बाद उसका मनन-चिन्तन नहीं करते तो आत्मा को शक्ति नहीं मिलती। जैसे माँ अपने बच्चे को स्कूल में जाते समय बहुत अच्छे भोजन का टिफिन बाक्स बनाकर देती है। बच्चा टिफिन साथ में ले जाता है तो उसे बहुत खुशी होती है। लेकिन भूल से वह भोजन खा न सका तो सारे दिनभर वह थकावट का अनुभव करेगा क्योंकि भोजन न खाने से उसे शक्ति नहीं मिली ऐसे ही मुरली सुनते समय ज्ञान का भोजन बुद्धि रूपी टिफिन में भरने के बाद हम उसे दिनभर खाते रहें अर्थात् मनन करते रहें तब ही आत्मा में शक्ति भरेगी, वरना आत्मा खालीपन अर्थात् खोखलेपन का अनुभव करेगी। इसलिए मुरली सुनने के बाद मनन करने की टेव डालें।

पढ़ाई की पूरी फीस देने वाले ही बेफिकर बादशाह बनते हैं–

पढ़ाई की पूरी फीस देना ही सम्पूर्ण निश्चय-बुद्धि बनना है। और जो पूर्ण रूप से निश्चय-बुद्धि बनता है उसका 'कुछ नया नहीं' का पाठ एकदम पक्का होता है जिससे वह हर परिस्थिति में अपनी स्थिति एकरस अर्थात् अचल अडोल रखता है। सदा वह बेफिकर बादशाह की न्यायीं विचरण करता है। वह सदा इस बेहद खेल को तथा अपने पार्ट को भी साक्षी होकर हर दृश्य का आनंद लेता है।

माया हमें संशय-बुद्धि बनाती है–

माया का हाथ छोड़कर ही हम भगवान् का हाथ पकड़ते हैं और उन्नति की ओर आगे बढ़ते हैं। तो माया ईर्ष्या वश भगवान् का हाथ छुड़ाने के लिए किसी-न-किसी प्रकार का संशय उत्पन्न करने का प्रयास करती रहती है। इस संशय रूपी महारोग से बचने के लिये हमें माया का भी सम्पूर्ण ज्ञान होना जरूरी है ताकि माया के बहुरूपों को हम पहचान सकें। माया रॉयल रूप में भी आकर हमें घायल कर सकती है। मुरली सुनते रहने से हम निश्चय-बुद्धि बनते जाते हैं। और विशेष यह पढ़ाई हमें माया से लड़ाई करने के लिये दिव्य-शस्त्र प्रदान करती है जिससे हम कभी भी माया से हार नहीं खाते।

बुद्धिवान कौन?

बुद्धिवान वह है जो माया दुश्मन से अपनी बुद्धि को सुरक्षित रखना जानता है। इतना ही नहीं, लेकिन चतुराई से मायाजीत बनकर विजयी स्थिति में सदा मस्त रहता है। उसका बुद्धि रूपी झंडा सदा ऊंचा रहता है और विजय की खुशी में लहराता रहता है। बुद्धिवान की दूसरी परख यह है कि वह अपनी बुद्धि को सर्वशक्तिवान दिव्य-बुद्धिदाता परमात्मा पर लंबे समय तक एकाग्र कर सके।

इस पढ़ाई से बुद्धि विशाल बनती है–

इस अलौकिक पढ़ाई से बुद्धि में सदा ज्ञान टपकता रहता है। जिससे बुद्धि देह और देह के सम्बंध तथा पदार्थों की हद से निकल सदा बेहद में रहती है। ऐसी विशाल बुद्धि सदा स्वस्थ अर्थात् शक्तिशाली और दिव्यता से भरपूर होती है।

विशाल बुद्धि वालों के हाथ में सदा योग की मशाल–

विशाल बुद्धि की विशालता बंधनमुक्त होने से असीमित होती है। ऐसी आत्मा के हाथ में सदा योग की मशाल और परमात्मा से अटूट बुद्धि योग जुटा रहता है। योग की मशाल माया कभी भी बुझा नहीं सकती। ऐसी आत्माएं अनेक आत्माओं के अंधकारमय जीवन को दिव्य रोशनी प्रदान करती हैं और उन्हें अपने सम्पूर्णता की मंजिल तक पहुंचाने के लिए मददगार बनती हैं।

विशाल बुद्धि वाली आत्मा खुशहाल होगी–

कहते हैं समुद्र का हृदय विशाल है इसलिये वह किसी भी स्थिति में अशान्त नहीं होता है, अपनी वास्तविक स्थिति में शान्त ही रहता है। इसी प्रकार जिसकी बुद्धि विशाल होगी अर्थात् जिसकी बुद्धि में तीनों लोकों और तीनों कालों का ज्ञान निश्चित रूप से धारण हो चुका होगा वह किसी भी स्थिति में कुपित नहीं होगा। अल्पज्ञ बुद्धि वाली आत्मा का हाल कभी गम और कभी खुशी का रह सकता है। लेकिन दूरांदेशी अर्थात् विशाल बुद्धि वाली आत्मा सदा खुश रहेगी।

यह पढ़ाई कराती है सदा कमाई–

जो सदा यह अनोखी पढ़ाई पढ़ते हैं वह सदा ज्ञान धन से मालामाल रहते हैं। वो सदा ही महादानी बनकर ज्ञान रत्नों का दान करते रहते हैं। जो निःस्वार्थी होकर महादानी बनते हैं उन्हों की कमाई भगवान् खुले दिल से बढ़ाते हैं। दूसरी बात, ऐसी आत्माएं ज्ञान को अपने जीवन में धारण करके उसका स्वरूप बनती हैं जिससे उनका जीवन सदा दिव्यता से सम्पन्न रहता है। ऐसा जीवन अनेकों को गुप्त प्रेरणा प्रदान करता रहता है जिससे उनकी सदा अविनाशी कमाई जमा होती रहती है।

होशियार विद्यार्थी सदा पेपर का आह्वान करते हैं–

जो विद्यार्थी चतुर होते हैं, वे हमेशा परीक्षा का आह्वान करते हैं क्योंकि परीक्षा देने से ही उनकी योग्यता का परिचय मिलता तथा पेपर देने के बाद ही वह अगली कक्षा में प्रवेश भी कर पाता है। वह सदैव सोचता है कठिन से कठिन पेपर आयें ताकि उसमें पास होकर वह अपने टीचर का भी नाम ऊंचा करे। इसी प्रकार ईश्वरीय पढ़ाई के अन्तर्गत आने वाले पेपर का आह्वान करना, खुशी-खुशी उनका सामना करके आगे बढ़ जाना, विघ्न-विनाशक की उच्चतम उपाधि से अलंकृत होने के नजदीक पहुँचना है।

इस पढ़ाई का अंतिम पेपर है निर्भय बनना–

यह पढ़ाई पढ़ने वाले विद्यार्थी अनेक पेपरों में पास होने के कारण शक्तिशाली बनते जाते हैं। जैसे-जैसे योग की स्थिति मजबूत बनती जाती है तो भय का नामों-निशान नहीं रहता। अंतिम समय व्यक्ति तथा भयानक परिस्थितियों के माध्यम से माया अनेक प्रकार के वार करेगी फिर भी योगी अपने त्याग तपस्या और सेवा के असीम बल से नष्टोमोहा बनकर सदा स्मृति-स्वरूप बनकर हाहाकार के समय भी निर्भय रहकर एकरस स्थिति रखने में सफलता प्राप्त करेगा। ऐसे अंतिम पेपर में पास होने वाले योगियों का ही नाम बाला होगा।

होशियार विद्यार्थी वो जो स्कालरशिप लें–

दुनिया में स्कालरशिप लेने वाले को लायक अथवा होशियार विद्यार्थी कहा जाता है। स्कालरशिप लेने वाले को सरकार की ओर से विशेष सुविधा मिलती है। इसी प्रकार ईश्वरीय पढ़ाई भी जो पूर्ण निष्ठावान तथा लग्न से पढ़ता है वह स्कालरशिप अर्थात् पास विद् आनर (Pass with honour) होता है। उसे विशेष सुविधा यह है कि धर्मराज पुरी में उसे सजा नहीं खानी पड़ेगी बल्कि स्वयं धर्मराज भी उसे सम्मानित करते हुए वेल्कम (Welcome) करेंगे। और जिस विद्यार्थी को ये अद्वितीय सम्मान मिलेगा निश्चय ही भविष्य में विश्व महाराजन की पदवी रूपी स्कालरशिप का भी वह अधिकारी होगा।

समारोह में पधारे श्रोताओं का दृश्य।

मद्रास: शान्तिधाम के वार्षिकोत्सव समारोह में भारत के पूर्व वित्त मंत्री भ्राता सी. सुब्रामनयम जी अपने विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। (बाएं से) विराजमान हैं भ्राता रामाकृष्णन, बहिन सरोजिनी वर्दप्पन तथा ब्र.कु. बहिनें।

संगरूर में चरित्र निर्माण आध्यात्मिक मेले का उद्घाटन करने के पश्चात् बहिन निपुन केन को ब्र.कु. बहिनें श्रीकृष्ण का चित्र भेंट करती हुई।

लुधियाना में गोरक्षणी सभा द्वारा आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम में विद्यालय के बच्चों द्वारा प्रस्तुत प्रोग्राम के सम्बंध में बी.के. सरस इनाम लेते हुए।

गोंडा: कार्तिक पूर्णिमा पर नूरामल आजाद मंदिर में राजयोग आध्यात्मिक प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए गोंडा जिलाधिकारी भ्राता

राजगांगपुर: दुर्गा माँ की झांकी का उद्घाटन करती हुई ब्र.कु. चित्रा बहिन।

समारोह में पधारे श्रोताओं का दृश्य।

मद्रास: शान्तिधाम के वार्षिकोत्सव समारोह में भारत के पूर्व वित्त मंत्री भ्राता सी. सुब्रामनयम जी अपने विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। (बाएं से) विराजमान हैं भ्राता रामाकृष्णन, बहिन सरोजिनी वर्दप्पन तथा ब्र.कु. बहिनें।

संगरूर में चरित्र निर्माण आध्यात्मिक मेले का उद्घाटन करने के पश्चात् बहिन निपुन केन को ब्र.कु. बहिनें श्रीकृष्ण का चित्र भेंट करती हुई।

लुधियाना में गोरक्षणी सभा द्वारा आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम में विद्यालय के बच्चों द्वारा प्रस्तुत प्रोग्राम के सम्बंध में बी.के. सरस इनाम लेते हुए।

गोंडा: कार्तिक पूर्णिमा पर नूरामल आजाद मंदिर में राजयोग आध्यात्मिक प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए गोंडा जिलाधिकारी।

राजगांगपुर: दुर्गा माँ की झांकी का उद्घाटन करते हुए ब्र.कु.चित्रा बहन।

आध्यात्मिक सेवा समाचार

ब्र.कु. सत्यनारायण, कृष्णानगर, देहली द्वारा संकलित

सारे भारत वर्ष से 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार ' कार्यक्रम के अन्तर्गत की जा रही सेवा के बहुत ही उत्साहवर्धक समाचार आ रहे हैं। कुछ समाचार निम्न हैं–

भोपाल–सेवा केन्द्र द्वारा "सर्व के सहयोग से सुखमय संसार कार्यक्रम के अन्तर्गत यत्र-तत्र बहुमुखी सेवाओं का आयोजन किया गया है। १. वरिष्ठ प्रशासकों की संगोष्ठी, २. एक दिवसीय योग शिविर ३. प्रवचन, गीत माला कार्यक्रम ४. नगर प्रदर्शनियां व झांकियां ५. गाँव-गाँव की सेवा, इन कार्यक्रमों द्वारा हर वर्ग की आत्माओं की सेवा की जा रही है।

अम्बाला कैन्ट सेवाकेन्द्र की ओर से नारायणगढ़ में 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' के अन्तर्गत राजयोग शिविर का आयोजन किया गया। इस शिविर में शहर के प्रमुख व्यक्तियों ने लाभ लिया। इस शिविर के समापन समारोह पर उपमण्डल दण्ड अधिकारी भ्राता संजीव कुमार जी अपनी युगल सहित मुख्य अतिथी के रूप में पधारे।

पालमपुर: "सर्व के सहयोग से सुखमय संसार" कार्यक्रम के उपलक्ष में शहर के गणमान्य व्यक्तियों को ईश्वरीय विश्वविद्यालय का परिचय दिया गया। इसके अलावा लगभग दस स्कूलों में भी अध्यापकों एवं विद्यार्थियों को इस कार्यक्रम से अवगत कराया गया।

नयागंज (कानपुर): "सर्व के सहयोग से सुखमय संसार की रचना" के अन्तर्गत एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें विभिन्न वर्गों के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनको ऐसा संसार रचने की ईश्वरीय योजना सुनाई गयी और स्नेह भरे शब्दों में सहयोग की अपील की गई जिससे लोग अत्यन्त प्रभावित हुए।

बैतूल सेवाकेन्द्र की ओर से मूलताई, भैसदेही, आमला, साखी, घोड़ा डोंगरी, दनोरा, चिचोली इत्यादि ग्रामों में 'चरित्र निर्माण प्रदर्शनी', प्रवचन एवं सतसंग का आयोजन किया गया। इस प्रोग्राम द्वारा अनेक ग्रामीण निवासियों की सेवा हुई।

हाथरस: "सर्व के सहयोग से सुखमय संसार" कार्यक्रम के अन्तर्गत हाथरस की प्रसिद्ध श्री कृष्ण गोशाला कमेटी द्वारा आयोजित मेला में 'विश्व नव निर्माण प्रदर्शनी एवं गोष्ठी' का आयोजन किया गया जिसमें नगर के गणमान्य व्यक्तियों ने भाग लिया। ग्राम सेवा अभियान के अन्तर्गत अनेक ग्रामों में भाई-बहनों की पदयात्रा टोली ने ईश्वरीय सन्देश प्रवचनों, गीतों, प्रदर्शनी द्वारा दिया।

जगाधरी सेवाकेन्द्र की ओर से कपाल मोचन नामक प्रसिद्ध तीर्थ पर 'संकट मोचन प्रदर्शनी' का आयोजन किया गया। यहां पर पधारे विशाल मेले में दर्शनार्थियों ने आध्यात्मिक प्रदर्शनी देखी और बहुत प्रभावित हुए।

नैनीताल: शरदोसव के अवसर पर जन नियोजन आयोग (उ.प्र.) द्वारा आयोजित कार्यक्रम में चरित्र निर्माण आध्यात्मिक प्रदशनी' का आयोजन किया गया जिसका शुभारम्भ भ्राता राज बहादुर द्विवेदी (पूर्व एम.एल.सी.) व सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डा. देवी दत्त पन्त (पूर्व कुलपति) प्रताप भैय्या (भूतपूर्व स्वास्थमंत्री उ.प्र.) के तत्ववाधान में सम्पन्न हुआ।

हलद्वानी सेवाकेन्द्र की ओर से शान्तिपुरी में राजकीय इन्टर कालेज में त्रिदिवसीय प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। जिसका उद्घाटन कालेज के प्रिन्सिपल, प्रधान व जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा सम्पन्न हुआ। इस प्रदर्शनी द्वारा अध्यापकगण तथा विद्यार्थियों ने विशेष लाभ उठाया।

पटेलनगर (दिल्ली) सेवा केन्द्र की ओर से जन-जन को शिव का सन्देश देने के लिए एक 'राजयोग प्रदर्शनी' का आयोजन वेस्ट पटेल नगर रामलीला पार्क में किया गया जिसका उद्घाटन नगर निगम सदस्य भ्राता ओम प्रकाश जी ने किया। प्रदर्शनी के साथ चैतन्य दैवियों की झांकी व राजयोग शिविर का भी आयोजन किया गया।

बुटवल (नेपाल): सेवाकेन्द्र की ओर से श्री ५ बड़ा महारानी सरकार के शुभ जन्मोत्सव के पुनीत अवसर पर भव्य **जलूस** निकाला गया। ब्र.कु. कमला जी ने शान्ति और एकता का सन्देश रत्न उद्यान मंच से सबको दिया। इसी शुभ अवसर पर विशिष्ट प्रतिनिधि एवं कर्मचारियों को "ईश्वरीय सौगात" उपहार स्वरूप प्रदान किया गया।

काठमांडू (नेपाल): समाचार मिला है कि नेपाल की महारानी के शुभ जन्म दिन के अवसर पर काठमांडू स्थित विश्व-शान्ति भवन में राजयोग शिविर का आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन नेपाल के सप्लाई मंत्री भ्राता परशु नारायण चौधरी जी ने किया। इस शुभ अवसर पर शान्ति यात्रा निकाली गई। महारानी जी को ईश्वरीय साहित्य व श्री कृष्ण का चित्र भेंट किया गया।

वड़नगर: सेवाकेन्द्र की ओर से सांगथला गाँव में सुन्दर झांकी, प्रवचन तथा राजयोग शिविर का कार्यक्रम रखा गया। लगभग १५०० आत्माओं ने लाभ उठाया। इसके अतिरिक्त १५, १६ गाँवों में प्रदर्शनी, प्रवचन तथा राजयोग शिविर का आयोजन करके ग्रामीण-जनों को लाभ पहुंचाया गया।

विशाखापट्टनम: *'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' कार्यक्रम में (बाएं से) ब्र.कु ओमप्रकाश जी (इन्दौर), महापौर भ्राता डी.वी. सुब्बाराव जी, ब्र.कु. कमला (रायपुर) ब्र.कु. हेमा जी, भ्राता रंगराजन, सम्भागीय प्रबंधक दक्षिण पूर्व रेलवे।*

जगदीश चन्द हसीजा, मुख्य सम्पादक, ब्र० कु० आत्म प्रकाश, सम्पादक बी ९/१९ कृष्णानगर दिल्ली द्वारा सम्पादन तथा ओम शान्ति प्रैस, कृष्णानगर, देहली-५१ से छपवाया Regd No. 10563/65-D, (E)—70